ISSN : 2394-1022

# संस्कृतिशोधसन्देशः

A Quarterly Trilingual Peer Reviewed National Referred Journal

समकक्षव्यक्तिसमीक्षितत्रैभाषिकराष्ट्रियशोधपत्रिका

वर्षम् : 11 संयुक्ताङ्कः : 38-39 अगस्त 2021 – जनवरी 2022 पृष्ठानि : 100

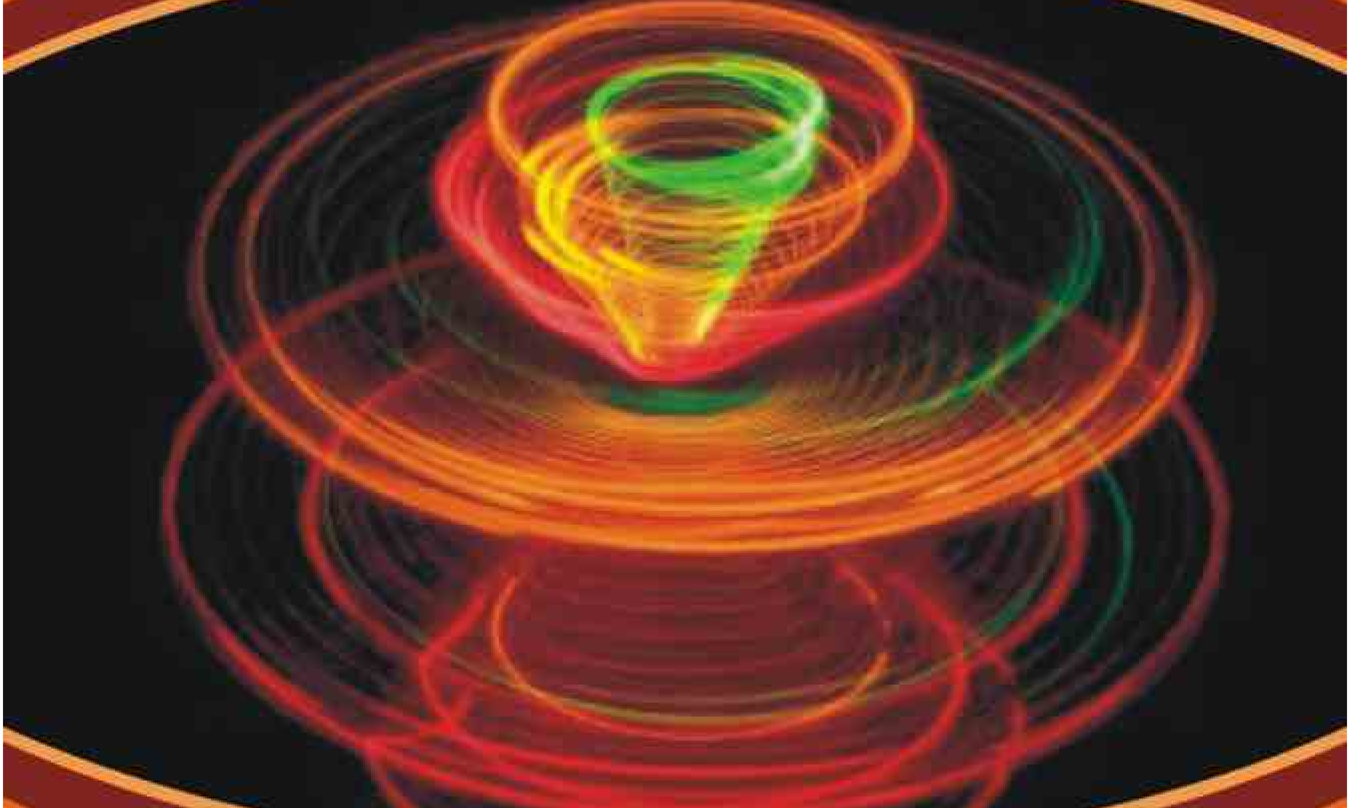

प्रकाशक :

श्रीमती-मोहरीदेवीतापड़ियाशोधसंस्थानम्

जसवन्तगढ़म्-341304 ( नागौरम्, राजस्थानम् )

ISSN : 2394-1022

# संस्कृतिशोधसन्देशः

**A Quarterly Trilingual Peer Reviewed National Referred Journal**

**समकक्षव्यक्तिसमीक्षितत्रैभाषिकराष्ट्रियशोधपत्रिका**

वर्षम् : 11 संयुक्ताङ्क : 38-39 अगस्त 2021 – जनवरी 2022 पृष्ठानि : 100

**परामर्शदातातृमण्डलम्**

श्री भगवतीप्रसादबगड़िया
प्रो. शिवकान्तझा
डॉ. सुरेशशर्मा
डॉ. जितेन्द्रकुमार-अग्रवालः
डॉ. जगदीशनारायणविजयः
वैद्य रमेश कुमार पारीकः
श्री वी.के.नागरः

**परिवीक्षामण्डलम्**

प्रो. रामकुमारशर्मा
डॉ. माताप्रसादशर्मा • प्रो. कुलदीपशर्मा
डॉ. शीशरामः • डॉ. पवनव्यासः
डॉ. कैलाशचन्द्रशर्मा • डॉ. रामेश्वरदयालशर्मा
डॉ. कुलदीपसिंहः • डॉ. नीरजत्रिवेदी
डॉ. कुंतलगांगुली

**मुद्रकः**

एम.बी.ग्राफिक
बाईस गोदाम, जयपुरम् | मो. : 94134 53790

**संरक्षकाः**

श्री बजरंगलालतापड़िया
श्री महावीरप्रसादतापड़िया
श्री शिवरतनतापाड़िया

**प्रधानसम्पादकः**

प्रो. विष्णुकान्तपाण्डेयः
आचार्य, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
जयपुरपरिसरः, जयपुरम्

**सम्पादकः**

डॉ. हेमन्तकृष्णमिश्रः
सेठ श्री सूरजमलतापड़ियाआचार्यसंस्कृतमहाविद्यालयः,
जसवन्तगढ़, नागौरम्, राजस्थानम्

**सहसम्पादकौ**

डॉ. राजेन्द्रप्रसादरैगरः
सहायकचार्यः (अ.)
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
जयपुरम्

डॉ. पंकजपुरोहितः
प्रवक्ता
व्याकरण विभाग, श्रीस्यादवाद महाविद्यालय, वाराणसी

**प्रकाशकः**

**श्रीमती-मोहरीदेवीतापड़ियाशोधसंस्थानम्**
जसवन्तगढ़म्-341304 (नागौरम्, राजस्थानम्)
फोन : 01581-230882 | मो. : 94619 26348, 92522 59688
ईमेल : smdt.jwg2008@gmail.com | वेबसाईट : www.stsm.edu.in

इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख लेखकों के अपने निजी विचार है जिसका उत्तरदायित्व स्वयं लेखकों का होगा।

# अनुक्रमणिका


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | परीक्षण का आंकलन | डॉ. हेमन्त कृष्ण मिश्र | 4 |
| 2. | भारत में दूरस्थ शिक्षा की प्रासंगिकता | डॉ. माताप्रसाद शर्मा | 7 |
| 3. | भट्टारकदेवशक्रविरचितप्रतापकाव्यस्य दशमसर्गस्य सम्पादनमध्ययनञ्च | डॉ. शशिकुमारशर्मा | 14 |
| 4. | भारत में बौद्ध उद्भव एवं विकास | डॉ० मीनू मिश्रा | 24 |
| 5. | Cognitive Process of Ancient Indian Psychology | Dr. Vandana Sharma | 25 |
| 6. | Occupational Pressure in Teachers | Dr. Chandra Bhan Saini | 29 |
| 7. | न्यायदर्शने सिद्धान्तविमर्शः | डॉ. रामसिंहः | 34 |
| 8. | शैक्षिकप्रविधेः उपागमौ स्थूलोपागमः मृदुलोपागमश्च | डॉ. राजेन्द्रप्रसादरैगरः | 38 |
| 9. | स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन | नीतू शर्मा | 41 |
| 10. | आधुनिक हिन्दी कविताओं में ग्रामीण जीवन | कंचन लोटा | 49 |
| 11. | पं० सम्पूर्णदत्त मिश्रस्य रचनासु अलंकार प्रयोगः | डॉ. गेहप्रदीप शर्मा | 54 |
| 12. | बालकों की उपलब्धि से सम्बन्धित कारक एवं विधियाँ | देवेन्द्र यादव | 59 |
| 13. | वेदेषु अग्नितत्त्वस्य वर्णनम् | मनीषमोदगिल | 64 |
| 14. | मातृकाणां परिचयात्मकपृष्ठभूमिः | अंशुगुप्ता | 69 |
| 15. | संप्रेषण तकनीकी | संदीप कुमार शर्मा | 79 |
| 16. | उच्चशिक्षायाः विद्यार्थिषु भविष्यनिर्माणस्य कृते मानसिकासन्तुलनस्य निवारणे समाजस्य भूमिका | डॉ. अलकाशर्मा | 83 |
| 17. | अग्निपुराणे प्रलयकालविमर्शः | अमृतकुमारशर्मा | 86 |
| 18. | ज्योतिषशास्त्रस्य षडांगानि | दिव्यान्शुशर्मा | 91 |
| 19. | ज्योतिषशास्त्रस्योद्भवः विकासश्च | अजयकुमारशर्मा | 96 |
| 20. | शिक्षायाः अवधारणा | संजयकुमारशर्मा | 99 |


पाठकेभ्यः प्रार्थनम् – अयि भो मान्याः विद्वांस ! इयं शोध-पत्रिका मासत्रये प्रकाशयिष्यते । अस्यै पत्रिकायै भवन्तः शोधलेखान्, वैचारिकलेखान्, कथाः विनोदवार्ताः, संस्कृतस्य विशिष्टसूचनाः अन्यप्रकाशनार्हसामग्रीः च सम्प्रेष्य अनुगृहणन्तु – दूरभाषः – मो : 9461926348 । ईमेलः – sanskritishodhsandesh@gmail.com । smdt.jwg2008@gmail.com

# सम्पादकीयम्

निखिलेऽस्मिन् देशे विदेशे वा संस्कृतस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं विद्यते। वैदेशिका अपि संस्कृतमध्येतुं भारतं प्रति पश्यन्तः अवलोक्यन्ते। विभिन्नपाण्डुलिपीनां शोधात्मकाध्ययने विविधदेशेषु जनाः अनुसन्धानकर्मणि रमन्ते। केचन आयुर्वेदम् इतरे योगम् अपरे नाटयशास्त्रम् अध्येतुं तत्पराः सन्ति। संस्कृतं प्रति सर्वेषामपि सुतरां प्रीतिः वर्धते। भारतसर्वकारोऽपि संस्कृतस्य परिप्रेरणे रतोऽस्ति। आवश्यकं वर्तते संस्कृप्रचाराय सुतरां श्रमवर्धनस्य। सर्वत्रापि देशे आधुनिककाले संस्कृतप्रचारकार्यं वर्धेत इति संस्कृतज्ञानां किंचित पवित्रं कर्म। संस्कृतक्षेत्रे न केवलं महान्ति कार्याणि एव करणीयानि, तत्र लघूनि लघूनि कार्याणि अपि करणीयानि तेनैव संस्कृतप्रचारः संस्कृतव्यापितः समाजे भवितुमर्हति। एकत्र शास्त्रपरम्परा रक्षणीया, अपरत्र प्रचारकार्यम् इति। एतदुभयं संस्कृतज्ञानामेव दायित्वं वर्तते। सर्वत्र समाजे व्याप्ता भवतु संस्कृतभाषा। अन्ते सर्वेभ्यः लेखकेभ्यः साधुवादः तापड़ियापरिवाराय च कृतज्ञतां विज्ञापयामः।

**–सम्पादकः**

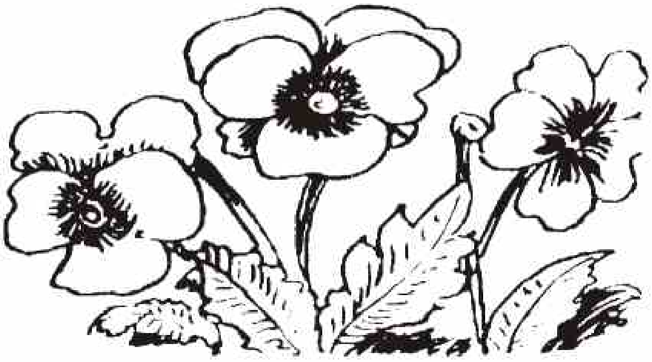

# परीक्षण का आंकलन

– डॉ. हेमन्त कृष्ण मिश्र

## भूमिका –

परीक्षण से अभिप्राय परीक्षार्थी के ज्ञान, कौशल, योग्यता, शारीरिक स्वास्थ्य आदि के अंकन से है। ये परीक्षण मौखिक रूप से, कागज पर या कम्प्यूटर पर प्रशासित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त किसी सीमित क्षेत्र का परीक्षण करने हेतु परीक्षक विभिन्न कौशल के समूह का शारीरिक रूप से प्रदर्शन करवाता है। परीक्षण, शैली, दृढ़ता एवं आवश्यकता के अनुसार भिन्न–भिन्न होते है। परीक्षण, किसी व्यक्ति के अवलोकन करने तथा संख्यात्मक पैमाने पर या वर्ग प्रणाली पर उनका वर्णन करने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया हें इसके माध्यम से छात्र या परीक्षार्थी में गुणात्मक एवं मात्रात्मक जानकारी प्राप्त होती है।

**परीक्षण की विशेषताएँ** – किसी भी परीक्षण को तब तक उपयुक्त नहीं माना जा सकता है जब तक कि वह कसौटी पर खरा नहीं उतरता हैं अतः किसी भी परीक्षण की गुणवत्ता एवं उपयोगिता में वृद्धि करने के लिए उसकी जाँच विभिन्न कसौटियों पर की जानी चाहिए –

परीक्षण व्यक्ति की विभिन्न प्रकार की योग्यताओं, क्षमताओं, रूचियों, गुणों एवं उपलब्धियों का पता लगाते है। अतः एक परीक्षण को उत्तम तथा गुणयुक्त होना चाहिए। उत्तम परीक्षण कहे जाने के लिए उसमें कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है। इन विशेषताओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है –

1. **तकनीकी विशेषताएँ** –
   - मानकीकरण
   - विश्वसनीयता
   - वस्तुनिष्ठता
   - वैधता
   - विभेदकारिता
   - मानक
   - विशिष्टता

2. **व्यावहारिक विशेषताएँ** –
   - उद्देश्यपूर्णता
   - व्यापकता
   - मितव्यतता
   - उपयोगिता
   - ग्राह्यता
   - प्रतिनिधित्वता
   - सुगमता
   - भाषा
   - सक्षमता

**परीक्षण के लिए आंकलन** – किसी भी परीक्षण का आंकलन हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं –

1. **उद्देश्य** – प्रत्येक परीक्षण का निर्माण किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाता है इसलिए किसी परीक्षण का आंकलन करते समय यह सर्वप्रथम देखना चाहिए कि वे उद्देश्य की पूर्ति कर रहे हैं अथवा नहीं। अतः परीक्षण का आंकलन प्रायः किसी न किसी उद्देश्य की पृष्ठभूमि में जाँचना चाहिए।

2. **ग्राह्यता** – एक उत्तम परीक्षण का एक गुण यह भी होता है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में समय में समान रहता है अर्थात् परीक्षण ऐसा होना चाहिए जो उन सभी को सरलता से ग्राह्य हो जिनके लिए इसका निर्माण किया गया है तथा उन व्यक्तियों पर किसी भी परिस्थिति में किसी भी समय प्रशासित किया जाए तो समान परिणाम प्राप्त होना चाहिए।

3. **अनुप्रयोग में सुगमता** – अनुप्रयोग में सुगमता से तात्पर्य यह है कि परीक्षण को परीक्षार्थियों पर प्रशासित करने के लिए किसी विशिष्ट परिस्थितियों की आवश्यकता न हो। शिक्षक को परीक्षण का निम्रण करने के बाद इस बात की जाँच कर लेनी चाहिए कि उसके द्वारा निर्मित परीक्षण का अनुप्रयोग सरल है अथवा नहीं। एक अच्छा परीक्षण वही होता है जिसका अनुप्रयोग सरल, फलांकन वस्तुनिष्ठ एवं निर्देश पूर्ण एवं स्पष्ट हो।

4. **आभासी वैधता** – आभासी वैधता से तात्पर्य परीक्षण के वास्तविक मापन से नहीं होता हैं बल्कि यह इस बात से सम्बन्धित होता है कि परीक्षण क्या मापता हुआ प्रतीत हो रहा है। यदि परीक्षार्थी को परीक्षण सही प्रतीत नहीं होगा तो इसका प्रभाव परिणाम पर पड़ता जिसके कारण प्राप्त परिणाम विश्वसनीय नहीं होते हैं। आधारभूत रूप से आभासी वैधता का सम्बन्ध जनसम्पर्क एवं सौहार्द स्थापना से है। आभासी वैधता को प्रायः परिस्थिति विशेष क अनुकूल पदों के पुनःव्यवस्थित कर सुधारा जा सकता है।

5. **समय** – परीक्षण का समय इसकी वैधता एवं विश्वसीयता को प्रभावित करता है इसलिए परीक्षण के निर्माण में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षण के लिए निर्धारित समय न तो बहुत अधिक हो और न ही बहुत कम। परीक्षण का समय निर्धारित करने के लिए परीक्षक को अपने परीक्षण को कुछ छात्रों पर प्रशासित करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि औसतन कितने छात्र उस परीक्षण को पूर्ण कर रहे है। उसी के अनुरूप परीक्षण का

समय निर्धारित करना चाहिए।

6. **मूल्य** – किसी भी परीक्षण के निर्माण में कुछ न कुछ व्यय होता हैं अच्छा परीक्षण वहीं होता है जिसमें अन्य मानकों के साथ–साथ उसकी लागत भी कम हो। अतः परीक्षण का निर्माण सीमित धन में ही होना चाहिए अन्यथा उस परीक्षण का प्रयोग सभी नहीं कर सकते। यही कीमत से तात्पर्य केवल परीक्षण समाग्री के मूल्य से नहीं है अपितु उसके फलांकन के मूल्य से भी है। अतः परीक्षण निर्माण करते समय तथा उसक आंकलन करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उसका निर्माण उचित मूल्य पर हो अर्थात् परीक्षण मितव्ययी हो।

7. **फलांक सार्थकता** – परीक्षण निर्माण के पश्चात् उस परीक्षण से मापी जाने वाली योग्यता के लिए कुछ अंक निर्धारित किए जाते हैं उन्हीं के आधार पर छात्र का मूल्यांकन किया जाता हैं अतः परीक्षण का फलांकन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि फलांक सार्थक हो क्योंकि किसी परीक्षण द्वारा एक फलांक प्राप्त करना अधिक विश्वसनीय होता है अपितु इसके कि अन्य परीक्षण से अनेक फलांक प्राप्त किए जाए।

8. **फलांकन की सरलता** – परीक्षण का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए जिसमें अंक प्रदान करने में सुगमता हो क्योंकि वैध परीक्षण वही होता है जिसका प्रयोग सभी कर सकें। अतः परीक्षण आंकलन करते समय इस बात का भी ध्यान रखना कि उसका फलांकन सुगम हो अन्यथा उस परीक्षण से प्राप्त परिणाम सार्थक नहीं होंगे या उसमें व्यक्तिनिष्ठता का प्रभाव आ सकता है।

**सन्दर्भ सूची :–**

1. डॉ. पुष्पा, अधिगम के लिए आंकलन, अमन प्रकाशन, कानपुर
2. एस के मंगल, अधिगम के लिए मूल्यांकन
3. डॉ. एस. के. महतो, अधिगम कें लिए आंकलन, ठाकुर पब्लिकेशन, जयपुर
4. डॉ. भारती शर्मा, अधिगम के लिए आंकलन, राठी प्रकाशन, आगरा

प्राचार्य
सेठ श्रीसूरजमलतापड़िया आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
जसवन्तगढ़,नागौरम्

# भारत में दूरस्थ शिक्षा की प्रासंगिकता

– डॉ. माताप्रसाद शर्मा

**प्रस्तावना** – भारत में अकादमिक परिदृश्य को बढ़ाने वाले नए जमाने के डिजिटल प्लेटफॉर्म की शुरुआत के साथ प्रौद्यागिकी हमारी शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग बन गई है। इन प्रौद्योगिकी प्रगति के बीच, कई कम्पनियों की उपलब्धता और हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रवेश करने वाली विभिन्न सरकारी पहलों के साथ दूरस्थ शिक्षा को गति मिली है।

शैक्षणिक विकास और शिक्षा के क्षेत्र के प्रौद्योगिकी के उपयोग ने भारतीय शिक्षा बाजार पर ध्यान केन्द्रित कर दिया है, जिससे देश अमेरिका के बाद ई–लर्निंग के लिए दूसरा सबसे बड़ा बाजार बन गया है। दुनिया भर में अध्ययन करने के लिए ऑनलाइन जाने के लिए कहा। दुनिया भर में शैक्षणिक संस्थानों के अचानक बंद होने से बड़ी संख्या में पाठ्यक्रमों की आभासी डिलीवरी हुई है। भारत में बहुत पहले से इग्नू (IGNOU) डिटेंस एजूकेशन की सुविधा दे रही है, जिसमें ज्यादातर सर्टिफिकेट, डिग्री, डिप्लोमा और यहां तक कि मास्टर्स तथा पीजी डिप्लोमा के कोर्स भी उपलब्ध है।

**दूरस्थ शिक्षा क्या है** – दूरस्थ शिक्षा का सीधा सा मतलब होता है, अकादमी से दूर घर या अन्य किसी जगह से पढ़ाई करना, जिसमें क्लासरूम या कॉलेज की सुविधा नहीं होती। ये डिजिटल रूप से फोन, लैपटॉप या अन्य साधनों के माध्यम से प्राप्त की जाती है। भारत में दूरस्थ शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए, यूजीसी ने देश में उच्च शिक्ष संस्थानों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (ऑनलाइन पाठ्यक्रम) विनियम, 2018 के तहत् छात्रों को डिस्टेंस/ऑनलाइन मोड में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा और डिग्री प्रोग्राम की पेशकश करने की अनुमति दी है। जैसा कि अधिकांश देशों ने ऑनलाइन सीखने के लिए अपनाया है, कई

भारतीय एडटेक कंपनियां भी मुफ्त ऑनलाइन कक्षाएं दे रही है, जबकि कुछ इसे रियायती दरों पर कर रही हैं।

दूरस्थ शिक्षा के लाभ ई–लर्निंग टूल शिक्षकों और छात्रों दोनों के लिए शैक्षिक संसाधनों का ढ़ेर प्रदान करते हैं, पारंपरिक शिक्ष पद्धति में जिनकी पहुंच उनके पास नहीं हो सकती थी चाहे उनका स्थान या स्थिति कुछ भी हो। एक छात्र शीर्ष प्रोफेसर से एक महाद्वीप दूर और वह भी अपने पसंदीदा समय में सीख सकता है। इसके अलावा डिस्टेंस एजुकेशन से निम्नलिखित लाभ है –

**आप पढ़ाई के साथ–साथ नौकरी कर सकते हैं** – वास्तव में डिस्टेंस एजुकेशन का विकल्प चुनने वाले छात्रों का एक बड़ा हिस्सा वे हैं जो अपनी नौकरी छोड़ना नहीं चाहते बल्कि उच्च शिक्षा भी चाहते हैं। ऐसे छात्रों के लिए दूरस्थ शिक्ष वरदान के रूप में आती है आप सप्ताहांत पर अध्ययन कर सकते है, जब आप कम से वापस आते हैं या रात के मध्य में भी। कमाते समय भी आपको सीखने को मिलता है। पैसे की बचत होती है। किसी भी कार्यक्रम के लिए, डिस्टेंस एजुकेशन डिग्री (ऑनलाइन या अन्य) का शुल्क नियमित ऑन–कैंपस डिग्री के शुल्क से कहीं अधिक किफायती हो सकता है। जो छात्र आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्पों की तलाश में हैं, वे दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम के लिए जा सकते है।

**समय की बचत** – कॉलेज जाने और जाने में समय बर्बाद नहीं होता, बस या ट्रेन के इंजतार में समय बर्बाद नहीं होता। डिस्टेंस एजुकेशन कार्यक्रम में, आपकी कक्षा ठीक आपके बेडरूम में होती है – आपके डेस्क पर अध्ययन सामग्री या आपके कम्प्यूटर पर ई–सामग्री। जिन छात्रों के पास पर्याप्त समय नहीं है, वे एक विकल्प के रूप में दूरस्थ शिक्षा की ओर रूख कर सकते हैं और अपने घर के आराम से इसे आगे बढ़ा सकते हैं। पारम्परिक शिक्षा पद्धति में वापस जाने की संभावना हम में से कई लोगों के लिए डराने वाली हो सकती है। एक प्रश्न

पूछना या यह बताना कि आप कक्षा में एक अवधारणा को समझने में असमर्थ हैं, कई छात्रों के लिए काफी शर्मनाक हो सकता है। डिस्टेंस एजुकेशन में ऐसा कुछ नहीं होता है।

यह एक ज्ञात तथ्य है कि अलग–अलग लोग अलग–अलग तरीकों से और अलग–अलग गति से सीखते हैं। एक कक्षा में, जब सभी को एक साथ पढ़ाया जा रहा हो, तो अक्सर प्रत्येक छात्र को एक ही पेज पर रखना मुश्किल होता है। कुछ छात्र कक्षा में अपनी शंकाओं को टीचर से पूछने में बहुत शर्माते हैं। यह वह जगह है जहाँ दूरस्थ शिक्षा का एक नियमित परिसर कार्यक्रम पर एक फायदा है। यदि आपको संदेह या प्रश्न हैं, तो आप मैसे इनबॉक्स में टीचर को पर्सनल मैसेज कर सकते है, इसके अलावा आप लाइव क्लास में तुरंत कमेंट बॉक्स में अपने प्रश्न या संदेह को लिखके भेज सकते हैं, इससे आपको तुरंत ही अपने सारे प्रश्नों के जवाब मिल जाते है।

**आप कभी भी, कहीं भी पढ़ सकते हैं** – उन परिदृश्यों को छोड़कर जहां आपको किसी निश्चित समय पर ऑनलाइन ट्यूटोरियल में भाग लेना होता है या वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से व्याख्यान देना होता है, आप जब चाहें, जहां भी चाहें, बहुत अधिक अध्ययन कर सकते हैं आपको कक्षा में अटकने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन आप अपने बगीचे में, अपने रहने वाले कमरे के सोफे पर या अपने बिस्तर पर आराम से अध्ययन करने जा सकते हैं।

**आसानी से प्लेसमेंट मिलना** – पिछले कुछ वर्षों में दूरस्थ शिक्षा को अंततः नियोक्ताओं के बीच कुछ स्वीकृति और मान्यता मिली है, जो एक उत्साहजनक संकेत हैं। जब तक दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम मान्यता प्राप्त है, तब तक आपको चिंतित होन की आवश्यकता नहीं है। भारत में, दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी) द्वारा अनुमोदित सभी दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम केन्द्र सरकार के तहत पदों और सेवाओं पर रोजनगार के उद्देश्य से स्वतः मान्यता प्राप्त हैं। निजी क्षेत्र के एंप्लॉयर भी अब डिटेंस एजुकेशन की डिग्री को महत्व देते हैं, और यहां तक कि कर्मचारियों

को अपनी नौकरी के साथ–साथ उच्च शिक्षा प्रापत करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं ताकि कर्मचारी अपने कार्य क्षेत्र में कौशल और विशेषज्ञता विकसित कर सकें।

**दूरस्थ शिक्षा से हानि–भारत में दूरस्थ शिक्षा से निम्नलिखित हानियां है–**

डिस्ट्रेक्शन – आमने – सामने बातचीत के लिए कोई सुविधा नहीं होती है और कोई सहपाठी नहीं है जो लंबित असाइनमेंट के बारे में लगातार याद दिलाने में मदद कर सकता है, डिस्ट्रेक्शन होने की संभावना अधिक है। बच्चे लगातार क्लास के दौरान या ब्रेक के बीच में गेम, सोशल मीडिया या वीडियों देखने लगते हैं जिससे उनके पढ़ाई और फोकस डिस्टर्ब होता है। यदि आप अपने दूरस्थ शिक्षा पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करना चाहते हैं तो आपको स्वयं को प्रेरित और केंद्रित रखने की आवश्यकता है। यदि आप आसानी से डिस्ट्रेक्टेड हो जाते हैं तो दूरस्थ शिक्षा एक अच्छा विकल्प नहीं है।

**छुपी कीमत** – यद्यपि एक दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम की लागत आमतौर पर एक नियमित कार्यक्रम की तुलना में सस्ती होती है, इसमें छिपी हुई लागतें शामिल हो सकती है। उदाहरण के लिए, यदि आपका दूरस्थ शिक्षा पाठ्यक्रम ऑनलाइन पेश किया जाता है, तो आपको कुछ प्रारंभिक खर्च करने पड़ सकते हैं जैसे कम्प्यूटर स्थापित करना और एक विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्शन प्राप्त करना। आपको प्रिंटर, वेब कैमरा आदि जैसे अतिरिक्त खरीदने पड़ सकते है।

**जटिल तकनीक** – शिक्षा के डिस्टेंस एजुकेशन मोड में प्रौद्योगिकी पर अधिक निर्भरता एक बड़ी खामी हो सकती है, खासकर जब शिक्षण एक ऑनलाइन वातावरण में होता है। कोई भी खराब सॉफ्टवेयर या हार्डवेयर चल रही कक्षा को ठप कर सकता है और सीखने की प्रक्रिया को बाधित कर सकता है। इसी तरह, यदि कोई छात्र कम्प्यूटर और तकनीकी जानकार नहीं है, तो उसका सीखने का अनुभव असंतोषजनक हो सकता है।

**गुणवत्ता से समझौता** – अक्सर नियमित शिक्षा का कम चरेरा भाई माना जाता है, दूरस्थ

शिक्षा अक्सर पर्याप्त अच्छी गुणवत्ता वाले संकाय सदस्यों की कमी से ग्रस्त होती है। अन्य मामलों में, भले ही प्रशिक्षक अच्छा हो, हो सकता है कि वह ऑनलाइन वातावरण में पढ़ाने में सहज न हो। कभी–कभी तकनीक पाठ्यक्रम के वितरण और डिजाइन के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाती है। इन सभी परिस्थितियों में एक छात्र हार जाता है। दूरस्थ शिक्षा प्रदाताओं को यह समझना चाहिए कि यह तकनीक नहीं है, बल्कि अच्छे और प्रभावी शिक्षक हैं जो छात्रों को पढ़ाते है।

**डिग्री की संदिग्ध विश्वसनीयता** – भले ही डिस्टेंस और ऑनलाइन शिक्षा को मान्यता मिलनी शुरू हो गई है, फिर भी बहुत सी धोखाधड़ी और गैर–मान्यता प्राप्त डिग्री की पेशकश की जा रही है। दूरी/ ऑनलाइन कार्यक्रमों की संख्या में वृद्धि के साथ, घोटाले करने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। यह संभावित एम्प्लॉयर के बीच मान्यता प्राप्त दूरस्थ शिक्षा डिग्री की विश्वसनीयता को प्रभावित करता हे।

**खराब इंटरनेट होने पर दूरस्थ शिक्षा को कोई स्कोप नहीं** – भारत में अब भी ऐसे बहुत सारी जगह हैं जहां पर इंटरनेट की सुविधा नहीं है और अगर है तो बहुत धीमा इंटरनेट की सुविधा है, तो ऐसे स्थान में रहने वाले बच्चों के लिए डिस्टेंस एजुकेशन का विकल्प बिलकुल भी लाभदायक नहीं है। भारत में दूरस्थ शिक्षा का भविष्य आगे बढ़ते हुए, सरकार छात्रों को उनकी दक्षताओं का मूल्यांकन करके और उन्हें उद्योग–आधारित कौशल के साथ जुड़ने में मदद करके उद्योग के लिए तैयार करने पर ध्यान केंद्रित करेगी। इसे प्राप्त करने के लिए, सरकार भारतीय संस्थानों और कॉलेजों को पारंपरिक संचालन से डिजिटल मोड में स्थानांतरित करने के लिए बढ़ावा दे रही है। इसी के अनुरूप, एमिटी यूनिवर्सिटी, क्राइस्ट यूनिवर्सिटी, AIMA (ऑल इंडिया मैनेजमेंट एसोसिएशन), IIM (इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट) अशोका यूनिवर्सिटी और ISB (इंडियन स्कूल ऑफ बिजनेस) जैसे कई

शैक्षणिक संस्थानों ने अब अपनी परीक्षा प्रक्रियाओं को ऑनलाइन ट्रांसफर कर दिया है। सरकार उन क्षेत्रों की पहचान करने के लिए अनुसंधान और नवाचार पर भी ध्यान केंद्रित कर रही है जो भारत में डिजिटल शिक्षा पहल को और समर्थन और मजबूत कर सकते हैं। भास्कराचार्य राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रिय अनुप्रयोग और भू–सूचना विज्ञान संस्थान (बीआईएसएजी–एन) जैसे भारतीय संस्थान 51 शैक्षिक चैनलों को प्रसारित करने के लिए उपग्रह संचार का लाभ उठा रहे हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ रिमोट सेंसिंग जैसे संस्थान भी अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी और इसके अनुप्रयोगों पर लाभार्थियों (जैसे कामकाजी पेशेवर, यूजी / पीजी, डॉक्टरेट छात्र, शिक्षाविद, स्कूली छात्र और स्कूल शिक्षक) को प्रशिक्षित करने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का लाभ उठा रहे हैं। 2020–21 में इन क्रार्यक्रमों से 2.42 लाख सदस्य लाभान्वित हुए हैं। इन पहलों से अंतरिक्ष आधारित अनुप्रयोगों और डिजिअल शिक्षा में अधिक अवसरों के द्वार खलने की उम्मीद है। यूनेस्को के अनुसार, भारत के आठ अन्य देशों (ब्राजील, चीन, बांग्लादेश, मिस्त्र, मैक्सिको, पाकिस्तान, नाइजीरिया और इंडोनेशिया सहित) में डिजिटल सीखने में तेजी लाने और वैश्विक डिजिटल शिक्षा पहल से लाभ उठाने के अभियान में शामिल होने की उम्मीद है। एक साथ, देशों से उम्मीद की जाती है कि वे पारंपरिक शिक्षा के दृष्टिकोण से डिजिटल की ओर शिफ्ट होंगे और वैश्विक स्तर पर डिजिटल शिक्षा क्षेत्र में अधिक अवसर पैदा करेंगे।

**उपसंहार** – भारतीय संस्थानों के अपने संचालन और सीखने की प्रक्रिया को ऑनलाइन करने के साथ, ई–लर्निंग क्षेत्र को एक बड़ा बढ़ावा मिल रहा है, जिससे एडटेक में आगे सीखने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की उम्मीद है। इसके अलावा, यह दूरदराज के क्षेत्रों में शिक्षकों को अपने कौशल को उन्नत करने और देश में सीखने और सिखाने के डिजिटल तरीकों को अपनाने में तेजी लाने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने में भी मदद कर रहा है। देश के डिजिटल परिदृश्य को मजबूत करने के सरकार के प्रयासों के साथ–साथ ई–लर्निंग

पाठ्यक्रमों की पेशकश करने के लिए निजी खिलाड़ियों की बढ़ती भागीदारी, डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देने और परिणामस्वरूप, छात्रों को सशक्त बनाने और उभरती प्रौद्योगिकियों के अवसर प्रदान करने की उम्मीद है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –


1. चार्टर वी.गुड (1993) ''अनुसंधान परिचय'', आगरा चावला एण्ड सन्स
2. गुप्ता एवं गुप्ता (2009): मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन। पेज नं. 29–31
3. गुप्ता एस. पी. (2007): दूरस्थ शिक्षा, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन पेज नं.
4. जायसवाल विजय (2014): भारतीय आधुनिक शिक्षा – एन.सी.ई.आर.टी. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, जनवरी 2014।
5. कपिल एच. के. (2000) ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाऊस
6. मंगल एस.के. (2008) ''शैक्षिक अनुसंधान एवं विधियाँ'' नई दिल्ली, प्रिन्टिग हॉल ऑफ इण्डिया।



विभागाध्यक्ष शिक्षा एवं निदेशक
अनुसन्धान केन्द्र
जरारासंविवि, जयपुर

# भट्टारकदेवशक्रविरचितप्रतापकाव्यस्य दशमसर्गस्य सम्पादनमध्ययनञ्च

– डॉ. शशिकुमारशर्मा

## समीक्षात्मकभागः

प्राचीनकालाद् वेदानां, शास्त्राणां चाध्ययनमध्यापनं मुख्यं पवित्रं कर्मेति मन्यते। शास्त्राणामध्ययनमध्यापनं तदैव अतीव सुकरं भवति यदा तच्छास्त्रस्यानुकूला पद्धतिराश्रीयते। नैकविधानां गद्यपद्यव्याकरणादीनां नाना शास्त्राणां साहित्यव्याकरणदर्शनादीनां पाठनं कथं वा करणीयमिति विषये शिक्षाविधाः प्राचीनार्वाचीनशिक्षणपद्धतीर्विमर्श्य निर्दुष्टरूपेणानुकूलपद्धतयः निरूपिताः।

अत एव प्राचीनार्वाचीनशास्त्राणां पूरकशास्त्रं शिक्षाशास्त्रमिति विदुषामभिप्रायः। कः विषयः, कया पद्धत्या पाठनीयम्, कया पद्धत्या नाध्यापनीयम् इति प्रवृत्तिनिवृत्तिजनकत्वात् शिक्षाशास्त्रस्य शास्त्रत्वं सिद्धम्। वस्तुतः शिक्षाशास्त्रिणः विषयानुकूलां पद्धतिं पाठयन्ति। यथा साहित्यशास्त्रस्य टीकापद्धतिः, व्याकरणस्य आगमन–निगमनपद्धतिः, पद्यस्य अन्वयविधिरिति। अस्मिन्नेव क्रमे संस्कृतशिक्षणे मया एका नूतनपद्धतिराश्रिता। का सा नूतनपद्धतिः, सा आकाङ्क्षापद्धतिः। आङ्–उपसर्गपूर्वककाङ्क्षिधातोः अच्–टाप्प्रत्ययाभ्याम् आकाङ्क्षा इति शब्दो निष्पद्यते। अपेक्षा, जिज्ञासा, अनुसन्धानम् इत्याद्यर्थेषु शब्दोऽयं प्रयुज्यते। सांख्यकारिकाव्युत्पत्तिवादवाक्यपदीयसदृशदुरुहविषयाणामपि आकांक्षापद्धत्या अध्यापनं भवितुं शक्यते, तेन शिष्याः समीचीनरीत्या अवगन्तुं शक्नुवन्ति।

शिक्षामनोविज्ञानानुसारं सर्वेष्वपि स्तरेषु प्रायः कण्ठस्थीकरणं निरस्तमभवत्। अत्र प्रश्नोत्तरपद्धत्या अध्यापनसमये आकाङ्क्षायाः आधारभूतं पदं कारिकायाः निष्कास्य तदाधारेण प्रश्नं पृच्छति। शिक्षार्थिनः तस्य प्रश्नस्य उत्तरं कारिकायां प्रयुक्तपदाधारेणैव ददाति। एवमासान्तं कारिकां पाठयति। वारं वारं कारिकायां विद्यमानानां पदानां प्रयोगेण तत्तत्पदानाम्

उच्चारणाभ्यासो भवति। तथा च विना कण्ठस्थीकरणेन कारिकां स्मरति। सांख्यकारिकायाः कारिकाणां पाठनम् आकाङ्क्षापद्धत्या कथं वा करणीयम्, येन छात्राः अल्पश्रमेण अधिकविषयज्ञानं प्राप्नुयुः।

महाभाष्येऽपि आकांक्षापद्धत्या अध्यापनं वर्तते इति दृश्यते। प्रश्नोत्तरमाध्यमेन आकांक्षापद्धतिराश्रिता। यथा अथ शब्दानुशासनम्। शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। केषां शब्दानाम् लौकिकानां वैदिकानाञ्च।

शोधावसरे भारतदेशस्याप्रकाशितमनुदघाटितमस्पृष्टं ज्ञानरूपमातृकाणां स्थितिं ज्ञात्वा तासां प्रकाशनार्थं मया प्रतिज्ञा कृता। अत एव मत्प्रतिज्ञापूरणांशत्वेन अप्रकाशितपाण्डुलिपिमाश्रित्य शोधकार्यमिदं प्रचलति। अस्मिन्नेव क्रमे अप्रकाशितमातृकायामपि आकाङ्क्षापद्धतिः आसीत् वा न वा इति, किं प्राचीनकालेऽपि आकाङ्क्षापद्धत्या पठनपाठनं भवति वा इति च मनसि प्रश्नः जातः। अप्रकाशितमातृकासु अन्वेषणं कृतम्। इमं विधिमाश्रित्य भट्टारकदेवशक्रमहोदयेन प्रतापकाव्यं रचितम्।

## मातृकायाः सामान्यपरिचयः –

अस्य ग्रन्थस्य एका मातृका जयपत्तनस्थजैनदिगम्बरप्राकृतापभ्रंशसाहित्या कादमिग्रन्थालये विद्यते। अस्याः मातृकायाः प्रतिकृतिः ग्रन्थस्यास्य सम्पादनाय स्वीकृता।

## ग्रन्थस्य सामान्यपरिचयः –

अस्मिन् ग्रन्थे द्वात्रिंशदसर्गाः सन्ति। अत्र ग्रन्थकारेण शिखरिणीवृत्तबद्धश्लोकस्य आकाङ्क्षापद्धत्या व्याख्यानं विहितम्। अस्मिन् श्लोके भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य प्रतापविषयः वर्णितः। अत्र प्रथमं तु मङ्गलाचरणं तत्पश्चात् प्रतापकाव्यस्य विषये लिखितम्। अस्य ग्रन्थस्य सम्पादितेकैकस्य सर्गस्य पत्रिकायां प्रकाशनं भवेत् इति मनसि निधाय सुधियां स्वान्तमावर्जयेत्तर्हि मन्ये सफलोऽयं मे प्रयास इति। प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमसर्गाणां प्रकाशनं जातम्। इदानीं मया षष्ठमसप्तमाष्टमनवम दशमसर्गस्य वर्णनं सम्पादनञ्चात्र क्रियते।

अत्र लेखकेन प्रथमसर्गे रामवाचकपक्षः स्थापितः। द्वितीयसर्गे कृष्णवाचकपक्षः स्थापितः। तृतीयसर्गे शिववाचकपक्षः स्थापितः। चतुर्थसर्गे ब्रह्मावाचकपक्षः स्थापितः। पञ्चमसर्गे सूर्यदेववाचकपक्षः स्थापितः। षष्ठमसर्गे शंवाचकपक्षः स्थापितः। सप्तमसर्गे शिवधर्मपक्षः स्थापितः। अष्टमसर्गे गणेशवाचकपक्षः स्थापितः। नवमसर्गे हनुमान्वाचकपक्षः स्थापितः। दशमसर्गे कर्त्तावाचकपक्षः स्थापितः। यथा कर्त्ता नैयायिकाणां यथा वेदान्तिकानां ब्रह्मा तथैव मीमांसकानां कर्मसकलविधिकरो भवतीति भावः। एवमेकादशसर्गे मीमांसकपक्षः स्थापितः। द्वादशसर्गे बौद्धमतपक्षः स्थापितः। त्रयोदशसर्गे ऋषभदेवपक्षः स्थापितः। चतुर्दशसर्गे जगच्छिरोमणिपक्षः स्थापितः। पञ्चदशसर्गे श्यामप्रभपक्षः स्थापितः। षोडशसर्गे आशीर्वादपक्षः स्थापितः। सप्तदशसर्गदारभ्य द्वात्रिंशद्सर्गपर्यन्तं द्वयक्षरं स्वीकृत्य चित्रालङ्कारमाध्यमेन व्याख्यानं कृतं लेखकेन। सप्तदशसर्गे लक्ष्मीपक्षः स्थापितः। अष्टादशसर्गे जयसिंहभूपपक्षः स्थापितः। विंशतितमे सर्गे श्रृङ्गाररसप्राधान्यपक्षः स्थापितः।

अनया रीत्या द्वात्रिंशत् सर्गे स्वकल्पनया आकांक्षापद्धत्या भिन्नभिन्नवाचकपक्षाः स्थापिताः।

## सम्पादनभागः

**श्रीगणाधिपतये नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीगुरुभ्यो नमः।**

**स जयति परमात्मा यस्य लोको हि मग्नो**
**मननवरसमुद्रे कृष्णिकावद्विभाति।**
**त्रिभिदरमुदरेयं खेंशुमव्वाहिके वा**
**मणिरिव शुभरत्नं रोहणाद्रौ यथा वा।।1।।**

**गुरुपदकमलं प्रणौमि भक्त्या**
**हृदि मयि सततं करोमि शक्त्या।**
**ऋजुमनवचनैः स्तवीमि सूक्त्या**
**नततनुशिरसा यवीमि युक्त्या।। 2।।**

**यस्याः प्रसत्तेर्गुणरत्नखानेर्जडार्थदात्र्यासु पदार्थपात्र्याः।**
**विशालबोधाः प्रभवन्त्यबोधाः प्रणौमि तां तत्प्रभुवक्त्रजाङ्गाम्।।3।।**

प्रतापकाव्यं रचयामि कामधेन्वाख्यकं षोडशवृत्ततो वै।
एकेन काव्येन तथैव युग्मपक्षेन भिन्नैः रसपङ्क्तिवृत्तैः।।4।।

भूपेन्द्रवृत्तं जगति प्रसिद्धमाषासु चेच्छ्लिष्टतरं भवेद्वै।
तत्संस्कृते किं बहुभिस्सदर्थैः क्लृप्तं मनोहारि सतां भवेन्न।।5।।

एकार्थतो यत्र भवेद्द्वितीयोऽप्यर्थोऽत्र चित्रप्रदमेव लोके।
काव्ये पुनर्यत्र युगत्रिपक्षार्थाः किं न युक्तं गुणिनां मुदे तत्।।6।।

अर्थप्रकाशोऽत्र न चास्ति विज्ञाष्टीकां विना वाध्ययनादृतेऽपि।
एकाक्षरीकोषसुशब्दयुक्त्या विमर्शनीयः स्पृहया विनाहो।।7।।

मादर्यवन्तोऽत्र भवेयुरस्य विज्ञा वयं किं पठनेन वित्त।
राजेन्द्रचेतो हरकं तदेतत्सदर्थसारं न परं कदर्थम्।।8।।

कवीन्द्रमाना नृपतेः सभायां काव्यं पठन्तु[1] परमादरेण।
परं सुखं नास्ति परत्र विज्ञाः प्रतापकाव्यस्य विमर्शनात्तत्।।9।।

क्व सूर्यवंशप्रभवो नृपोऽसौ क्व चात्र बुद्धिर्मम दुर्बलार्था।
तथापि राजेन्द्रगुणा बलान्मां वाचाल्यते चूतपिकेव चौत्रे।।10।।

सन्त्येव सन्तो भुवि ये गुणेषु पराः परेषां ग्रहणेषु गृध्राः
प्रयोजनं तेऽपि विना धरित्र्यां जीयासुरत्रापरकृत्य विज्ञाः।।11।।

जीयासुरन्येऽपि हि दुर्जनाख्याः निष्कारणं ये परदोषगृध्राः।
येषां भिया न स्खलते[2] सतां धीरहो महानेष मतो गुणो मे।।12।।

नाना कवित्वेषु चणास्तथापि
प्रतापकाव्यं वदनेषु यूयम्।
ताम्बूलवत्कृत्य नृपस्य गोष्ठ्यां
विशंतु विज्ञाः कुपमुन्मनाश्चेत्।।13।।

---

[1]पठन्तू इति मातृकायां पाठः।

यथापरे मिष्टतराः सिताऽग्रे विभान्ति लोके हि कथापरा वा।
रामायणीभागवतीकथाऽग्रे काव्यानि विश्वानि तथैतकाग्रे।।14।।

इदं प्रबन्धं विरचय्य पूर्वं सूत्रं प्रवक्ष्ये प्रथमं हि तस्य।
द्वात्रिंशदर्थप्रसरप्रदस्य काव्यस्य स्वोपज्ञविनिर्मितस्य।।15।।

## इति पीठिका।

## ।। दशमः सर्गः।।

सरामोऽरामोऽसौ रमणिगणगौणज्ञ अगुणः।
सकृष्णाभः कृष्णो हतभुवनकालुष्यकलनः।।
प्रतापेट्शंकर्त्ता शिवपदिशिवो वोऽवनकरो ।
विधेः कर्त्ता वेधा सकलविधिदो भूपभवतु।।1।।

## अस्यार्थः[3] –

हे प्रतापेट् प्र इति सुशान्तौ। प्र इति सुशान्तिताः शान्तिं भीतातापाः इति मानेन संतप्ताश्च ते ईशाः शत्रुराजानो येन सः प्रतापेट् तत्संबुद्धौ हे प्रतापेट्। हे भूप भू इति भूम्यां प इति पूषावद्योऽसौ भूपस्तत्संबुद्धौ हे भूप हे भूमिसूर्य नः प्रागुक्तोथपः पापी पूषावृषण आत्मजः इति सौभरिकृतैकाक्षर्याम्। कर्त्ता नैयायिकमतस्थः परमेश्वरः अनादिपरमब्रह्मानित्यनिरञ्जनः वः युष्माकं शं सुखं यथा भवति तथा अवनकरो रक्षाकरो भवतु।

### 1. किं भूतः कर्त्ता ? सरामः।

शरशब्देन पञ्च अशब्देन हेतुस्तान् पञ्चहेतून् पञ्चभूतान् पृथ्व्यप्तेजोवातव्योमनिमीयते संश्लेषणी क्रियन्ते येन सः सरामः। अर्थात् जगदुत्पादनकरणे येन पञ्चभूता निष्पादिताः पूर्वम्।

### 2. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ?

---

[2]सवलते इति मातृकायां पाठः। [3]सम्पादकेन योजितपाठः।

अरामोऽसौ रामाः स्त्रियश्च उ इति बन्धनं च स इति शंका च उ इति शोकश्च रामो सावः। नास्ति रामोऽसावो यस्य सः अरामोऽसौ स्त्रीबन्धनशंकाशोकविरहित इत्यर्थः। उकारो बन्धने लोभे इति शंकायामव्ययस्तु सः इति उकारः क्षत्रिये नेत्रे हरमौलौ हरे हरौ मात्रायां शेषफूत्कारे शोके संबुद्धिषु स्मृतः इति कालिदासकृतैकाक्षर्याम्।

## 3. पुनः कीदृशः कर्त्ता ? रमणिगणः।

र इति विज्ञानं त एव मणयस्तेषां गणः समूहो यस्य सः रमणिगणः विज्ञानमणिधारक इत्यर्थः। रः पुमान् पावके कामे क्षये विज्ञे शरेव्यये इति कालिदासकृतैकाक्षर्य्याम्।

## 4. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? गौणज्ञः।

गौ इति वाणीसरस्वतीस्तस्याः णैः शब्दैः ज्ञ इति जाननार्हो योऽसौ गौणज्ञः। अर्थात् सरस्वतीशब्द ज्ञेय इत्यर्थः। गौर्नाके वृषभे चन्द्रे वाग्भूदिग्धेनुषुस्त्रियामिति।

## 5. पुनः कीदृशः कर्त्ता ? अगुणः।

निर्ल्लेप इत्यर्थः।

## 6. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? सकृष्णाभः।

कृष्णेन सह वर्त्तमानः सकृष्णः स चासौ आसमन्ताद्भानीति सकृष्णाभः। अर्थात् अवताराये चतुर्विंशतिसंख्यकास्ते तस्यैवांशाः अत एव सकृष्णाभ इत्यर्थः। निजसमानकृष्णे शोभमान इति भावः।

## 7. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? कृष्णो हतः।

कृष्णस्य व्यासस्य ऊः इति कण्ठस्तेन हत इति कृष्णोहतः। अर्थात् वेदव्यासेन उच्चारितः तत्स्वरूपवर्णनं विहित इति भावः।

## 8. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? भुवनकालुष्यकलनः।

भू इति पृथ्वी चवनम् इति जलं चक इति अग्निश्च अ इति वातश्च आ इति आकाशश्च ते भुवनकाः रुक्ष्य इति रुहबीजजन्मनि प्रादुर्ष्भावे चेति धातुस्तस्य उणादिकत्वेषु निपातनात् रुक्ष्य इति जातं भुवनकानां पृथ्व्यप्तेजोवाताकाशानां रुष्य इति प्रादुर्ष्भावजन्मस्तैः। भुवनकालुष्यैः कृता इति मध्यमपदलोपः। कलना रचना येन सः

भुवनकालुष्यकलनः। अर्थात् पञ्चभूतानां रचना प्रक्कृत्वातैर्जन्मसंसारो विहित इत्यर्थः।

**9. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? शिवपदिशिवः।**

शिवस्य तत्वज्ञानस्य पदि इति प्रापणस्तेन शिवः इति मुक्तिर्यन्मते सः शिवपदि शिवः। तत्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम इति वचनात्। शिवः प्रोक्तः सुभाषित इति वचनात्।

**10. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? विधेः कर्त्ता।**

विधेः विश्वरचनायाः नानाप्रकारविधानस्य कर्तृता इति।

**11. पुनः कथं भूतः कर्त्ता ? वेधा।**

वे इति साक्षीभूतस्तस्य धा इति धारणाधरित्रीवायोऽसौ वेधा सर्वजगत्साक्षीभूतधारणाधारक इति भावः। वेः साक्षी वैः कणो रण इति सौभरिकृतैकाक्षर्याम्।

**12. पुनः कथं भूतः कर्त्ता सकलविधिदः।**

चतुराशीतिलक्षसंसारीजीवयोनिभ्रमणे सकलविधानस्य दातेति भावः।

**इति कर्त्तापक्षोऽर्थः।**

**श्रीमच्छ्रीजयसिंह* भूपतनयो भून्माधवादिर्हरितस्माद्योजनि सर्वराजमुकुटालङ्कारभूतो भुवि।**
**तस्य श्रीशप्रतापसिंहनृपतेः काव्ये प्रतापाह्वये श्रीमद्भट्टारकदेवशङ्करचिते सर्गो गतः पंक्तिमः।।10।।**

**।। इति श्रीप्रतापकाव्ये दशमः सर्गः।।10।।**

सहायक–आचार्यः, व्याकरणविभागः
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
जयपत्तनम्

*जयसिं इति मातृकायां पाठः।

# भारत में बौद्ध उद्भव एवं विकास

– डॉ० मीनू मिश्रा

मनुष्य की स्वभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह किसी भी महान् विभूति अथवा मनीषियों तथा धर्म एवं सम्प्रदाय के विषय में सुनता है, तो वह उस विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना चाहता है, वह जानकारी प्राप्त करने से ही सन्तुष्ट नहीं होता है, अपितु वह उस विषय की समग्र एहलौकिक एवं परलौकिक तथ्यों का भी अनुभव करना चाहता है।

इसी क्रम में भारतवर्ष में एक महान् विभूति महात्मा बुद्ध और इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय व धर्म बौद्ध धर्म है। जिसकी उत्पत्ति के विषयों में विद्वानों अथवा मनीषियों का मतैक्य नहीं है, परन्तु अधिकांशतः विद्वानों का मानना है कि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों के कारण (खिलाफ) हुआ था।

कुछ प्राचीन एवं अर्वाचीन आचार्यो का मन्तव्य है कि महात्मा बुद्ध के समय में याज्ञिक कर्मकाण्ड में उत्पन्न जीव हिंसा, अन्धविश्वास तथा बौद्धिक वर्ग (ब्राह्मण व परोहितों) के द्वारा गतिरोध उत्पन्न करना, लिंग अथवा जाति आधारित असमानता आदि के विरूद्ध एक आंदोलन मात्र ही से बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था।

इसी बिन्दुओं का समर्थन करते हुए एस. राधाकृष्णन तथा डी. आर. भण्डारकर ने कहा है कि बौद्ध धर्म एक ऐसी नैतिक व्यवस्था थी जो वैदिक धर्म में उत्पन्न कुरीतियों को दूर करने का प्रयास कर रहा था। राधाकृष्णन तथा भण्डारकर के शब्दों में निम्न प्रकार है –

Buddism was a ethical system that was endeavoring to cleanse the vedic religion of its abernations.

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति विषयक विचार की कड़ी में जी. स धर्ये तथा एन. दत्त का विचार है कि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति ब्राह्मणों के विरूद्ध क्षत्रियों द्वारा सामाजिक वर्चस्व हेतु परिवर्तन के लिये चलाया गया परिणाम था। धर्ये तथा दत्त के शब्दों में निम्न प्रकार है –

This resulted from the struggle for social hegemony waged by the khatllya against the brahamans.

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था।

कुछ विद्वानों का मानना है कि उत्तरवैदिक काल में "लौह तकनीक" का विकास हुआ, जिससे गंगाघाटी के मैदान को सफाई करने में अत्यधिक सहयोग मिला और यह लौह तकनीक ने कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जिससे "अधिशेष उत्पादन" में सहायता मिली। जिससे नगरीकरण तथा व्यापारिक केन्द्रों का उदय हुआ।

नगरीकरण से बहुत से वैचारिक समस्या उत्पन्न हुई, जिसके समाधान के रूप में महात्मा बुद्ध ने पशु हिंसा की निंदा तथा शिल्प, व्यापारादि को प्रोत्साहित किया।

महात्मा बुद्ध ने असम्बद्ध महिलाओं (alienated women) तथा सार्वजनिक भोजनालय (Public eating house) को सामाजिक मान्यता प्रदान किया।

महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म की ओर जनसाधारण को आकर्षित करने के उद्देश्य से बौद्ध भिक्षुओं को सलाह दी कि वे ब्राह्मण व पुरोहित वर्गों के आडम्बर पूर्ण, लोभी एवं असंयमी जीवन के विपरीत सादगीपूर्ण और पवित्र जीवन व्यतीत करें।

इस प्रकार लौह तकनीक के बढ़ते प्रयोग को बौद्ध धर्म के उद्भव एवं विकास के उत्तरदायी कारणों के रूप में देखा जा सकता है।

नगरीकरण तथा बौद्ध धर्म के सम्बन्धों के बीच में कुछ विद्वानों का मत निम्न प्रकार है–

मेक्स वेवर के अनुसार बौद्ध धर्म स्वयं को समय के साथ नगरों के विकास, नगरीय राजंतंत्र और नगरीय अभिजात्यवर्ग के रूप में व्युत्पत्ति करता हे। वेवर के शब्दों निम्न प्रकार है– Buddhis present itself as a prodnet of the urban development of urban kingship which brought the city into being.

डॉ रामशरण शर्मा एवं डॉ० दुबे के अनुसार बौद्ध धर्म पददलित वर्ग की अपेक्षा निश्चय ही समृद्ध वर्ग की उपज थी आरम्भिक दिनों में बौद्ध धर्म धनी और प्रभावशाली लोगों के दान और उदारता पर अत्यधिक निर्भर था और इसमें कोई सन्देह नहीं, कि बौद्ध धर्म नगरों और उनके धनी निवासियों पर आश्रित था। डॉ. शर्मा और दुबे के शब्दों में निम्न प्रकार है –

Buddhism rebelects its depenednce on cities and their rich inhanbitans more than on way.

नगरीकरण के उद्भव के साथ–साथ विभिनन प्रकार की नई सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक शक्तियाँ अस्तित्व में आई। बुद्धकाल में नगरीय केन्द्रों के उद्भव, मुद्रणप्रणाली तथा व्यापार वाणिज्य ने एक नवीन तथा शक्तिशाली व्यापारिक वर्ग को जन्म दिया, जिससे श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक जैसे बौद्ध धर्म के महान्तम संरक्षक उभरकर समाज में आये।

जब महात्मा बुद्ध अपने धर्मशासन के 45वाँ वर्ष पूरा करने वाले थे तो इस धर्मशासन में भी बिम्बसार और कौशल के राजा प्रसन्नजीत राजनीतिक विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में थे। जिन्हें महात्मा बुद्ध ने अपना व्यक्तिगत मित्र तथा संरक्षक बताया है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म का विकास नगरीकरण के साथ–साथ हुआ है।

महात्मा बुद्ध ने अपने कार्य को स्थायी बनाने के लिए संघ की स्थापना की थी। यह संघ प्रजातंत्र की शैली पर स्थापित था और यह संघ अपराधी भिक्षुओं को दण्ड देने का भी कार्य करता था।

महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् इनके प्रधान शिष्य आनन्द ने राजग्रह में प्रथम संगीति बुलायी, जिसमें सुत तथा विनय पिटक को लिपिबद्ध किया गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् ही विनय के कठोर नियम के खिलाफ प्रबल विरोधी मत खड़ा हो गया। इन्हीं विरोध की शान्ति के लिए बौद्ध संगीति द्वितीय को बुलाया गया, परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ, बौद्ध धर्म दो धाराओं में विभाजित हो गया।

हीनयान – यह धारा (शाखा) वह शाखा है जो बुद्ध के उपदेशों को अक्षरशः पालन करते हैं, इसीलिए, शाखा को स्थिरवाड़ीरुथेरवादी, हीनयान शाखा कहा जाता है। इस शाखा का लंका, बर्मादि दक्षिणी देशों में विस्तार हुआ है।

महायान – यह शाखा वह शाखा है जिसने समय के साथ–साथ अपने आप को परिवर्तन किया हे। जो स्वयं को महायान कहता है।

इस शाखा का विस्तार, चीन, जापान, मंगोलिया तथा कोरियादि उत्तर के देशों में हुआ है। इस शाखा का विस्तार का प्रमुख कारण है परिवर्तन को स्वीकार्य करना।

इस शाखा पर ब्राह्मण धर्म के सिद्धान्तों का बड़ा ही प्रभाव रहा है विशेषतः भगवद्गीता के कर्मयोग का। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार नागार्जुन महायान शाखा के आदि दार्शनिक थे।

जबकि नागार्जुन की जीवनी आधारित पुस्तक अपराजिता से स्पष्ट होता है कि नागार्जुन स्वयं ब्राह्मण से प्रभावित थे क्योंकि अपराजिता में स्वयं नागार्जुन पत्नि के देहावसान के पश्चात् सूर्यकान्त को श्राद्ध के नियम बताते है।

इसी प्रकार सूर्यकान्त विरचित पुस्तक **"टक्क से मेरे बाबूजी"** में एक तथ्य प्राप्त होता है कि जब सूर्यकान्त के बेटे का उपनयन होता है तो नागार्जुन स्वयं आचार्य की भूमिका में रहकर विभिन्न याज्ञिक कार्यो को सम्पादित किये थे।

उपरोक्त विवरण के आधारण पर हम निष्कर्षतः कह सकते है कि बौद्ध धर्म की महायान शाखा की उत्पत्ति तो ब्राह्मण के समर्थन में नहीं हुआ था अपितु ब्राह्मण जाति के पुरोहित वर्गो के द्वारा चलाया गया पाखण्ड व आडम्बर के खिलाफ और समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं कुरीतियों के विरोध में हुआ था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–


1. डॉ. ममता मिश्रा, भारतीय दर्शन, कला प्रकाशन, वाराणसी
2. राहुल सांकृत्सायन, दर्शन दिक्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद
3. दर्शन कोश, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
4. बरट्रेन्ड रसल, ए हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलोसफी



सहायकाचार्या

शिक्षा विभाग

ज.रा.रा.संस्कृतविश्वविद्यालय, जयपुर

# COGNITIVE PROCESS OF ANCIENT INDIAN PSYCHOLOGY

*- Dr. Vandana Sharma*

As we know, cognition is a process that involves many types of mental actions such as; how do we receive our knowledge, stores it, remembers or retrieves it and uses it etc., all are involved in cognition. Cognitive mental processes include the processes of perception, memory, attention, learning and thinking.Therefore, we will consider in detail the explanations of all these processes by ancient Indian psychology.

## 1. Perception -

The ancient Indian thinkers have given a lot of thought to the processes involved in perception. It is the view of the people that there are clear stages in perception – Nirvikalpa and Savikalpa. Nirvikalpa is called the undetermined state, while Savikalpa is called the determined state. In the undetermined state, a person has only a sense of the stimulus, the properties of the stimulus are not known. Various schools of ancient Indian psychology have interpreted perception in different ways, which are briefly described below:

The founder of Buddhist philosophy was Mahatma Buddha. He considered perception as a cognition that is free from imagination. It is free from other concepts like class, name etc. Perception is completely sensory. Perception consists of direct and immediate knowledge. According to the Nyayabindu of Dharmakirti, all perceptions are momentary and undetermined. Perception consists of a series of separate sensations in which each sensation is momentary. This is the reason why perception is said to be undetermined.

Distinguishing between philosophy and knowledge in Jain philosophy, perception has been explained. In knowledge, the person is also aware of the unique characteristics of things.By other sects Philosophy has been called a Nirvikalpa knowledge.

The second stage of perception is called Iha in Jain philosophy, in which there is associative coordination of sensory elements.

According to the Nyaya schools whose pioneer is Maharishi Gautam, Perception is defined as a cognition that -

(1) Which arises from the contact of objects with the sense organs.

(2) Which cannot be expressed in words

(3) One who does not go wrong.

(4) Which can be clearly defined.

In this, the first feature is said to be the most important and based on this, the

definition of perception has been given in the Nyaya schools as follows- The knowledge arising from the interaction of the senses and matter is perceptible.In other words, the knowledge which arises from the interaction of the senses and the object is called perception. It is clear from this that three things are important in perception -

(1) Senses - The senses are of two types - the sense organs and the senses of action. The mind is an example of an inner sense organ, from which the knowledge of the sorrow and happiness of the soul is obtained.

(2) Subject - Subject means things. If there is a lack of things, then whose knowledge will the senses get?

(3) Sense contact - Sense contact means the relation of the senses with the objects. Unless the senses are combined with things, knowledge does not arise.

According to the Samkhya system, the founder of which is considered to be Maharishi Kapil, according to him, perception helps the mind and senses. According to Prof. Hiriyanna, when a person sees a suitable stimulus, he himself takes the form of an object in the intellect. Such refinement of the intellect has been seen not only in perception but also in other forms of consciousness.

## 2. Attention and Distraction -

In the Upanishads, self-realization is said to be achieved only through concentration on meditation. In the Bhagvad Gita, Shri Krishna has said that the mind may be fickle, yet the concentration of meditation can be increased by controlling the mind with constant practice and dispassion and it is also said in the Bhagvad Gita that when the mind is under the control of Rajas Guna and Tamas Guna then there is a distraction. But when the mind comes under the control of the Sattva guna, the concentration increases and the focus is easily fixed at some point. Ancient psychologists considered desire as one of the causes of distraction, which has a greater tendency to be influenced by personal experiences. These people have considered vairagya as the most suitable means to reduce such predisposition.

## 3. Learning -

According to Kautilya's Arthashastra, the following 7 things are needed for the process of learning to happen -

1. willingness to learn
2. receive lessons daily
3. understanding the text
4. keep them in memory
5. ponder over them
6. practice decision making

7. showing affection for truth.

According to the Brihadaranyaka Upanishad, three processes are involved in learning :

**Shravan(listening),Manan (contemplation), Nididhyasan(meditation).**

The first word is Shravan.This means listening intently to the teachings of the Enlightened one.

The second step is Manan. It is a process of logically thinking about what has been listened to.

If you move forward in the sequence of listening and contemplation in the right manner, then meditation is bound to follow. Steadying the mind in the truth that has been doubtlessly derived from listening and contemplation and getting absorbed in it , is Nididhyasan.In this way, in the process of learning, adequate emphasis has been laid on the processes of reflection and reconsideration.In Taittiriya Upanishad also, processes like self-study and discourse have been considered important for learning. In self-study one learns by reading the text himself and in discourse one gives his knowledge to others.

The rules of learning are also mentioned in Gita and Yoga Sutras. The only rules for learning in these scriptures are practice and dispassion.

In practice, the person repeats the physical movements over and over again in order to learn verbal materials or muscle skills. Here the learner is called the Sadhak and the process is called Sadhana. In addition to the Gita, the third rule of learning has also been said to be important and that is - to learn Self control well.

## 4. Memory and Imagination -

Memory is an important mental process which has been studied in great depth by the ancient Indian thinkers. According to the Samkhya thinkers, memory is a cognition that arises out of influence or effect called Samskara. In other words, a person is not only aware of any experience, but an effect of it also arises in him. Which remains in it for some time and which can be recalled later.

Patanjali has also defined memory in the same way. According to Patanjali, memory is such a mental process in which things are stored which a person has already experienced. A person stores his past experiences in the form of Samskaras in the mind. When the Samskar remains constant in the mind for some time, then that process is called Dharana.

According to Jain philosophy, perception is different from memory. It is saved from degradation by not recompiling past experiences in memory. This process of degradation is called Avicyuti. In Buddhism, the effect of past experiences has been called Samskar, which is considered a residual form of present cognition resulting from changing the momentary

cognition and the residual form has been given the name of desire.

In the Nyaya- Vaisheshika schools the effect of past experiences is understood as a quality of thr soul arising out of cognition. In the Samkhya ,Yoga and Vedanta , the sacrament is considered to be a regeneration of the mind or inner being.

According to the Gita, the cause of what is called oblivion or the illusion of memory, is because of Moha or Delusion. Therefore, the reason for forgetting is due to the predominance of a particular kind of sensation or emotion. With the passage of time, the feelings become weak due to lack of practice. There is forgetfulness even in the absence of good health.

## 5. Thought and Language -

A prominent Buddhist thinker Dharmakriti who is also the author of Nyayabindu, is of the view that imagination is an act of contemplation by which things are given a particular name.Inference is considered by ancient Indian psychologists to be a thought which arises from perception. According to **Dr. Radhakrishnan**, "in inference individuals move from the perceived state to the indirect state." Normally thinking is directly related to language. Modern psychologists have even accepted that on the basis of the language of a person, his thinking is clearly known.

Ancient Indian psychologists have given importance to speech or words in language. The basis of the word is sound. Sound is divided into 4 stages -

**1. Para 2. Pashyanti 3. Madhyama 4. Vaikhari**

Para is the seed stage of voice where there is no movement in it but there is inner power in it. Pashyanti is the second stage of voice in which vibration or movement occurs in the voice. In this state, the voice is related to the psyche. Then in the next stage i.e. Madhyama, the voice is related to the intellect and the voice has an inner meaning. The final stage is called Vaikhari where the person expresses the voice by speaking. In this state, object and sound are related to each other on a concrete and physical level.

In conclusion, it became clear that a very successful attempt has been made by the Ancient Indian psychologists to explain the cognitive processes. Many of the latest concepts of modern psychologists have evolved from these explanations.

**Assistant Professor (Guest)**
**Deptt. of Education**
**JRRSU, Jaipur**

# Occupational Pressure in Teachers

- *Dr. Chandra Bhan Saini*


## Abstract :-

Today's life is full of challenges. In everyday life we come across many situations. The work of a teacher is a physically and mentally challenging. A teacher needs to use a lot of energy in his daily chores in the classroom coupled with his personal and family commitments. This trend which is a routine for a teacher forwards a lot of stress to the teacher. More than ever before work is not seen as the root of infinite satisfaction and fulfillment, but rather a source of stress, discontentment and humiliation. This increase negative orientation to work is probable due to the fact that man nolonger finds meaning or a sense of him/herself in the community or as Freud(1962)ones suggested, but which does not seen to exist today, his work at least gives him asecure place in a portion of reality in the human community. It is because of thedramatic changes that have taken place in society over the last decade or two that work and life stress have became more immediate focal points of interest. The life and existence of any business depends on how it adjusts its material resources, financial resources and other capabilities according to the enterprise. If proper adjustment is not made with the business then the person starts feeling pressure. That is, to experience pressure in business. The main task of teachers is to get teaching work done in school, college. In addition to the teaching work in the school, other tasks such as assessment, co-scholastic activities and discipline etc. have to be done. Due to being involved in all these tasks, the teacher feels pressure. Due to the duty towards one profession, teachers are not able to go to another profession. Child centered education system is prevalent in the present era. In which teaching work has to be done based on the interests and needs of the children.


**Keywords -** Occupational,Teachers Pressure, Education

## Introduction :-

Teacher is the basic pillar of education. The job of the teacher is to teach the students.

In the teaching work, the preparation before teaching, the knowledge of the subject-room management, the teacher's specialty and the teacher's personality relationship has a profound effect. For this it is necessary that there should be no stress and worry in his professional life, because the effect of stress and worry falls on his work efficiency. Apart from teaching teachers, question paper making, mid-day meal, election work, census etc. work also has to be done. Teachers are engaged in work even after school time. Due to which teachers feel pressure towards business. In science, state like emotions and mostly the used do describe human personality are constructs. A construct is a proud abstraction and a hypothetical entity which does not have actual physical existence but has proved useful in explaining observable phenomena. It is distinguished from something that has definite physical prosperities like a table or a highway, or from anobserve able act that can be described by such a statement as he ran down the street anxiety is painful uneasiness of mind over an impending of anticipated ill.- Webster-1956

It is the teacher who makes the knowledge manifest. Whose teacher's art and personality can bring the desired change in the behavior of the student. Humayun Kabir's statement is - Teachers are the builders of the nation's future. The teacher carries out the process of teaching and learning with ease and expertise. With the good efforts of the teachers, successful guidance of the child and balanced development of his personality makes him a successful citizen. In ancient times, the place of teachers is paramount. The learners used to receive education by staying in the company of the Guru. The teacher profession was considered a dignified occupation. In the present context, the teacher profession is losing its dignity. The entire teacher community is getting maligned by the behavior and actions of some teachers. At present, teachers neither consider teaching work as their responsibility, nor do they take responsibility for teaching work. School commitment is influenced by workload. And this workload is the main reason for business pressure. The modern era has become a symbol of fast- paced technological life. One who adopts teaching work as a profession has started understanding it as a means of subsistence. Presently there is pressure on teachers to bring quality in education. The present education system has become job oriented. Due to which the teachers find themselves unable to inculcate moral work

practices in the students along with the objectives of general education.

It is a well known fact that the work of the human unit is purposeful and important for its purpose. Therefore, problems arise from human needs and their solution is related to fulfillment of needs. That is why it is said that necessity is the mother of invention. Whatever the action of a human being, but the operation and editing of that action is need based. If we look at today's environment, then we have many expectations regarding our teacher-education and education business. If you look at the old and modern teachers, see the declining dignity of the teachers, see the increasing corruption in the educational world, see the falling values of teachers and education and see the changing nature of the education world, then it is understandable in a single glance that Today, there are many discrepancies in the educational world and the behavior of teachers. Today, the education system may not seem perfect according to the educational demands. For this reason, today a strong need is being felt that the present teacher can give his product i.e. learner according to the need of the society. At the same time, their behavior and maturity should be according to the conscience of their nature, only then they will be able to become honest towards their work. If we look at the ancient Indian teacher and modern teacher from the point of view of understanding, then it becomes clear that in the present society the maturity, professionalism of the teacher is viewed with suspicion. Along with this, due to the falling level of teachers and work pressure, the graph of their achievement levels is also decreasing. Presently, teachers are considering teaching as a maintenance business. Whereas teachers have the highest responsibility for the development of the society.

**According to the Oxford Dictionary,** "Stress is such a psychological component that manifests itself through many factors and makes the affected person physically and mentally ill for a long time." Stress is a psychological process that is a negative function of many human actions. The stress that is found regarding the business is the occupational pressure. The effectiveness of teaching is very much dependent on the qualified ability, skill and efficiency.

**Methods of Identifying Stress :-** Identification is the first step towards correction; with this belief in mind it is strongly advised that a teacher should understand the

implications of stress on his personal health and social life. The best ways to have stress identified easily is to remain activein his social circle and readily accept any recent psychological or behavioral change observed by the others.

**Self Analysis :-** The best way is to keep a check on your own health, attitude and behavior. Any change in these should be noted and necessary remedial measures be taken immediately to overcome this situation.

**Mutual Analysis :-** Another way is to maintain close liaison with other members of the faculty and discuss the irritants that are creating problems or are likely to create stress for the teachers. This is one way to identify and eradicate the issues which are likely to become the cause of stress beforehand. The faculty members or an organization of teachers can benefit the affected teacher with each other's experience.

**Organizational Role :-** The organization can also play a positive role in helping their teachers in identifying the causes of stress within their schools. Problems such as isolation and disruptivebehavior on the part of students and their parents can very conveniently be handled atthe top level by the management amicably without putting the teacher in a stressful situation.

**The National Policy on Education 1986** states that "the status of a teacher in a society reflects its social, cultural, etc". No nation can be above the level of its teachers.

**Conclusion :-** In the present time of globalization, there is a need for teachers to change the qualifications related to knowledge, skills, efficiency, values and attitudes to prove the power of their business. Teaching is one of the most respected professions. The teacher has to effectively fulfill the level of proficiency in his teaching work and be endowed with appropriate skills, attitudes and abilities. So that the objectives of education can be fulfilled and the classroom environment can be made interesting and fresh. Teacher's encouragement towards students, high motivation teaching plans, teachers are helpful in reducing professional pressure. If teachers get freedom from clerical work, if the teacher community gets the benefit of not putting them in work other than teaching, then the

obstacles faced by teachers in teacher-learning will automatically end. Teachers will be able to achieve the teaching objectives by using their full abilities, competencies in a diligent manner. Therefore, only with the advancement of education, the progress of the country will also be continuous.

## Reference :-


1. Mills Sandra, H (2002) - Stress Management for teachers, Madhuban Educational Books New Delhi.
2. Mohanty,S.(1992) - "Occupational stress and Mental Health in Executives". A comparative study of the Public and private sectors, Reproduced from fourth survey of Educational Research, NCERT, New Delhi.
3. Singh Karna (2018): Development of Education System in India and its Challenges, Govind Publication Lakhimpur Khiri .
4. Bhattacharya JC (2007) :Teacher Education Agrawal Publication Agra.
5. Agnihotri Ravindra (1997): Modern Indian Education Problems and Solutions Hindi Granth Academy Jaipur.
6. Mamta (2017) Study of occupational stress on secondary school principals, Jain Vishwa Bharati University Ladnu Nagor Rajasthan.



*Assistant Professor (Contract)*
*Department of Education*
*JRRS University Jaipur*

# न्यायदर्शने सिद्धान्तविमर्शः

- डॉ. रामसिंहः

धर्मार्थकाममोक्षाख्येषु चतुर्विधपुरूषार्थेषु मोक्ष एव परमपुरूषार्थः, तस्य नित्यत्वात्।[1] 'ब्रह्मभावश्च मोक्षः'[2] 'ब्रह्मावगतिरेव पुरूषार्थः'[3] इति अद्वैतिनामभ्युपगमः। 'स्वर्गादि प्राप्तिर्मोक्ष इति मीमांसकाः। एतेषां मते स्वर्ग एव परमपुरूषार्थः।' साङ्- ख्यदर्शने महर्षिणा कपिलेन 'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृतिरत्यन्तपुरूषार्थः।'[4] अतः मोक्षस्वरूपं तत्प्राप्त्युपायं च सर्वे दार्शनिकाः स्वस्वमत्यनुसारं विवेचयन्ति।

तत्र महर्षिणा गौतमेन - 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः'[5] इति सूत्रेण दुःखानां दुःखसाधनानां चात्यन्तिकी निवृत्तिर्मोक्ष इति तत्स्वरूपम् - 'प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास -च्छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः'[6] दुःखजन्मप्रवृत्तिदोष-मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः'[7] इति सूत्रद्वयेन

षोडशविधपदार्थानां तत्त्वज्ञानेन क्रमशः सर्वेषां दुःखप्रवृत्यादीनामात्यन्तिकी निवृत्तिः, ततश्चापवर्ग इति तत्प्राप्त्युपायश्च प्रतिपादितः।

षोडशपदार्थेषु षड्पदार्थः सिद्धान्तोऽस्ति। अहमत्र न्यायदर्शनग्रन्थमाश्रित्य सिद्धान्तपदार्थस्य लक्षणस्वरूपच प्रतिपादितुमिच्छामि। सिद्धान्तो नाम यः परीक्षकैर्बहुविधं परीक्ष्य हेतुभिः साधयित्वा स्थाप्यते, निर्णयः स सिद्धान्तः। 'तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः'[8] इति न्यायदर्शने निरूपितः।

समुदितार्थश्च तन्त्रार्थसंस्थितिस्तन्त्रसंस्थितिः। अधिकरणानुषक्तार्थसंस्थिति-रधिकरणसंस्थितिः। अभ्युपगमसंस्थितिरनवधारितार्थपरिग्रहः। तद्विशेषपरीक्षणायाभ्युप-

1. नित्यश्च मोक्षः सर्वैः मोक्षवादिरभ्युपगम्यते, ब्रह्मसूत्रमहाभाष्यम् १/१/४
2. ब्रह्मसूत्रमहाभाष्यम् १/१/१
3. ब्रह्मसूत्रमहाभाष्यम् १/१/१
4. साङ्ख्यसूत्रम् १/१
5. न्यायदर्शनम् १/१/२२
6. न्यायदर्शनम् १/१/१
7. न्यायदर्शनम् १/१/२
8. न्यायदर्शनम् १/१/२६

गमसिद्धान्तः।[९] अथवा तन्त्रं शास्त्रं तदेवाधिकरणं ज्ञापकतया यस्य तादृशस्य योभ्युपगमस्तस्य समीचीनतया असंशयरूपतया स्थितिः इति। अत्र अभ्यपगम्यमानोऽर्थः सिद्धान्त इति भाष्यम्। अभ्युपगमव्यवस्था सिद्धान्तः। अभ्युपगमः इदमित्थंभूतं वा इति न्यायवार्तिकटीका[१०] अत्रेयं व्युत्पत्तिः सिद्धस्य संस्थितिः सिद्धान्तः इति। संस्थितिरित्थं भावव्यवस्था धर्मनियमः[११] शास्त्रितार्थनिश्चय शास्त्रप्रतिपादितार्थनिश्चय इत्यर्थः।[१२] प्रमाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः[१३] तथा चोक्तं तार्किकरक्षायाम् अभ्युपेतः प्रमाणैः स्यादाभिमानिकसिद्धिभिः। सिद्धान्तः सर्वतन्त्रादिभेदात्स चतुर्विधः।

सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थित्यार्थान्तरभावात्। '[१४] इति

चतुष्प्रकारो हि सिद्धान्तः - सर्वतन्त्रसिद्धान्तः, प्रतितन्त्रसिद्धान्तः, अधिकरणसिद्धान्तः, अभ्युपगमसिद्धान्तश्चेति।

1. सर्वतन्त्रसिद्धान्तः - 'सर्वतन्त्राविरूद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्र- सिद्धान्तः'[१५] सर्वतन्त्राविरूद्ध सर्वशास्त्रभ्युपगत इति बहवः। वस्तुतो यथाश्रुत एवार्थः अन्यथा तन्त्रेऽधिकृत इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेरत एव च जात्यादेरतदुत्तरत्वमपि सर्वतन्त्रसिद्धान्तः न च तन्त्रेऽधिकृत इति स्पष्टार्थं लक्षणे तु न देय एवेति वाच्यं मनस इन्द्रियत्वस्यापि सर्वतन्त्रसिद्धान्तापत्तेः नव्यास्तु सूत्रस्योपलक्षणमात्रत्वाद्वादिपतिवाद्युभयाभ्युपगतः कथानुकूलेऽर्थः स इति वदन्ति। अतः स्वशास्त्रे यदुपदिष्टोऽर्थः सर्वशास्त्राविरुद्धश्च स सर्वतंत्रसिद्धान्तः यथा-चाक्षुषं प्रमाणमिति, 'नन्वत्रापि विवदन्ते ब्रह्मवादिनां हि सर्वैवेयमविद्या, अविद्या च कथं प्रमाणमिति' न व्यवहारावस्थायां तैरपि तत्प्रामाण्यभ्युपगमात्, सांख्यालक्षणविषयप्रतिपतिस्तु प्रतिशास्त्रं भवतु, चाक्षुषं प्रमाणमितीयति सर्ववादिनामविवादः।

2. प्रतितन्त्रसिद्धान्तः - 'समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्र- सिद्धान्तः।'[१६]

---

9. गौतमसूत्रभाष्यम् १/१/१६
10. गौतमसूत्रवृत्तिः १/१/२६
11. गौतमसूत्रभाष्यम् १/१/२६
12. गौतमसूत्रवृत्तिः १/१/२६
13. तर्कभाषा पृ ४२
14. न्यायदर्शनम् १/१/२७
15. न्यायदर्शनम् १/१/२८
16. न्यायदर्शनम् १/१/२९

तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थ इति वर्तते, यथा न्यादर्शने ईश्वरेच्छाप्रेरितपरमाणुनिर्मितानि पृथिव्यादीनि समानतन्त्रे कणव्रतमते तथैव सिद्धानि परतन्त्रे च साङ्ख्यादिशास्त्रे तथा नाभ्युपगम्यन्त इति, यथा वा गुणत्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्महदहङ्कारादिक्रमेण भूतसर्ग इति साङ्ख्यानां

स्वतन्त्रसिद्धोऽर्थः समानतन्त्रेऽपि पातञ्जले योगशास्त्रे सिद्ध एव परतन्त्रे तु वैशेषिकादिमते न सिद्ध इति। नन्वस्य कथं प्रमाणमूलत्वं यथार्थमेव सांख्यसिद्धान्तस्तु प्रमाणमूलत्वाभावेऽपि परतन्त्रत्वख्यापनायोदाहृतः तदभिप्रायेण मूलता वक्तव्येति।

3. अधिकरणसिद्धान्तः – 'यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरण- सिद्धान्तः'[17] अधिकरणसिद्धान्तं लक्षयति 'यस्यार्थस्य सिद्धो जायमानायामेवान्यस्य प्रकरणस्य प्रस्तुतस्य सिद्धिर्भवति सोऽधिकरणसिद्धान्तः इत्यर्थः यथा तद् द्वयणुकादिकं पक्षीकृत्योपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृति- मज्जन्यत्वे साध्यमाने सर्वज्ञत्वमीशस्य, एवं हेतुवलादपि यथा दर्शनस्पर्शनाभ्यामेवार्थग्रहणादिन्द्रियादिव्यतिरिक्त आत्मनि साधिते इन्द्रियनानात्वं तथा च यदर्थसिद्धिं विना योऽर्थः शब्दादनुमानाद्वा न सिध्यति सोऽधिकरणसिद्धान्त इति। वस्तुतस्तु शाब्दत्वमनुमानत्वं चाविवक्षितं प्रमाणमात्रनये - चितम् अत एव प्रत्यक्षेप स्थूलत्वसाधनानन्तरमुक्तमात्मतत्वविवेके सोऽयमधिकरणसिद्धान्तन्यायेन स्थूलत्वसिद्धौ क्षणभंग इति तत्र च वाक्यार्थसिद्धौ तदनुषंगीयो यः सोऽधिकरणसिद्धान्त इति वर्तिकफल्लिकां लिखित्वा येन केनापि प्रमाणेन वाक्यार्थसिद्धौ जन्यमानायां योऽन्यार्थः सिध्यति स तथेत्यर्थः इति व्याख्यातम्। एवं हेतुरीदृशः पक्षश्च वाक्यार्थ इति टीकावचने च उपलक्षणमेतदित्युक्तं तत्र तत्र विशिष्टैव लक्षणं कार्यम्। यत्तु जनकीभूतव्यापकताज्ञाने व्यापकोटावेव विषयः प्रकृतानुमित्या व्यापककोटौ विषयीकृतः शब्दजनकपदार्थज्ञानविषयत्वे

सति शाब्दविषयत्वेति द्वयमधिकरणसिद्धान्त इति तत्र इन्द्रियनानात्वादौ भाष्याद्युदाहृतेऽव्याप्तेरिति।

4. अभ्युपगमसिद्धान्तः – 'अपरीक्षिताभ्युपगमात्तद्विशेष परीक्षणमभ्युप- गमसिद्धान्तः'[18] इति।

---

17. न्यायदर्शनम् १/१/३०

अपरीक्षितस्य साक्षादसूत्रितस्य विशेषपरीक्षणं विशेषधर्मकथनम्। अभ्युपगमादिति ज्ञापकत्वे पचमी अभ्युपगमज्ञापकमित्यर्थः विशेषपरीक्षणाज्ज्ञायते सूत्रकृतोऽभ्युपगतमिदमिति तथा च साक्षाद्सूत्रिताभ्युपगमोऽभ्युपगमसिद्धान्तः यथा मनस इन्द्रियत्वमिति वृत्तिः।

निष्कर्षः –

सर्वतन्त्रसिद्धान्तो यथा– पञ्चज्ञानेन्द्रियाणीत्यादिः। एवञ्च

सर्वैरंगीकृतम्। प्रतितन्त्रसिद्धान्तो यथा अनित्यः शब्द इति। एवञ्च नैयायिकैरंगीकृतं न तु मीमांसकादिभिः। अधिकरणसिद्धान्तो यथा क्षित्यादिकर्तृसिद्धौ कर्तुः सर्वज्ञत्वम्। असंमतमपि यदभ्युपगम्यान्यदुच्यते सोऽभ्युपगमसिद्धान्तः। यथा द्रव्यं शब्दस्तथाप्यनित्य एवेति। इत्येवमादिश्चतुर्विधः सिद्धान्तः इति।

सहायकाचार्यः
दर्शन विभाग
जरारासंविवि, जयपुरम्

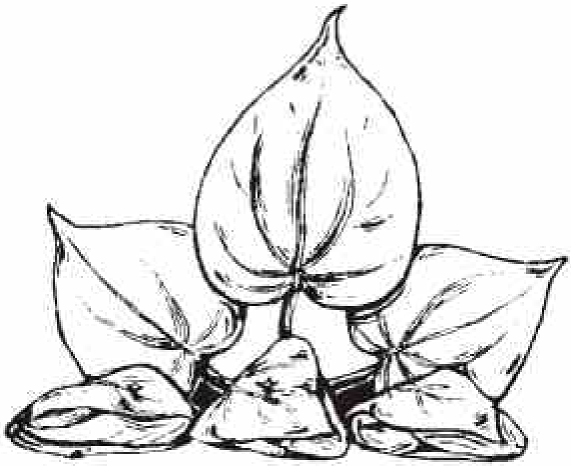

18. न्यायदर्शनम् १/१/३१

# शैक्षिकप्रविधेः उपागमौ स्थूलोपागमः मृदुलोपागमश्च

– डॉ. राजेन्द्रप्रसादरैगरः

**भूमिका** – मानवजीवनस्य प्रत्येकं पक्षः वैज्ञान्विकान्वेषणेभ्यः आविष्कारेभ्यश्च प्रभावितोऽस्ति। शिक्षायाः क्षेत्रमपि अनेन प्रभावेण मुक्तं न भवितुं शक्नोति। सर्वप्रथमं एजुकेशनल टेक्नोलॉजी अस्य शब्दस्य प्रयोगः इंग्लेण्डदेशे महाभागेन 1967 ई.तमे वर्षेऽकरोत्। एतस्य महत्त्वं उपयोगिताञ्च दृष्ट्वा राष्ट्रीयशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषदेन शैक्षिकतकनीकीकेन्द्रमारब्धं कृतम्। 1929 ई. तमे वर्षे अमेरिकादेशस्य ओहियो विश्वविद्यालये **सिडनीप्रेसी** नाम्ना महाभागेन शिक्षणयन्त्रस्य प्रयोगः शिक्षणक्षेत्रेऽकरोत्। 1950 ई. तमे वर्षे बी एफ स्कीनरमहाभागेन प्रोग्राम्डलर्निंगपद्धतेर्विकासमकरोत्। शैक्षिकतकनीकेः अर्थस्वरुपञ्च एजुकेशनल टेक्नोलॉजी इत्यस्य निर्माणं द्वयो शब्दयोः मेलनेनाभवत्। प्रथमं तु एजुकेशनल द्वितीयञ्च टेक्नोलॉजी इति। तकनीकी आंग्लभाषायाः टेक्नोलॉजी शब्दस्य पर्यायः। यस्यार्थः– दैनिकजीवने वैज्ञानिकज्ञानस्य प्रयोगकरणस्य विधयः। जैकोटो महाभागानुसारं (1973) वैज्ञानिकावस्थानां प्रविधीनाञ्च प्रयात्मकरूपमेव तकनीकीविज्ञानमिति।

**भारतदेशे शैक्षिकतकनीकी** – भारतदेशे शिक्षायाः विभिन्नान्यङ्गानि सुदृढ़ीकरणे राष्ट्रीयशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषदस्य महत्वपूर्णं स्थानं विद्यते। अस्मिन् क्षेत्रे 1960–70 ई. तमे वर्षे शाह–कुलकर्णी–के पी पाण्डे–प्रेमप्रकाशकपाड़िया–कुलश्रेष्ठश्चेत्यादयः कार्यं कृतवन्तः। शैक्षिकक्षेत्रस्य कार्येषु डॉ. दवे महाभागस्य महत्वपूर्णं स्थानमस्ति। अद्य शैक्षिकतकनीकीविज्ञानस्य भारतदेशे अनेकेषां महाविद्यालयानां संस्थानानाञ्च शिक्षकप्रशिक्षणस्य कार्यक्रमे समावेशितं क्रियते। तकनीकीविज्ञानं बालकानां व्यवहारस्याध्ययने शिक्षायाः सहायतां करोति तथा च तस्मिन् परिमार्जनाय सुसंस्कृताय संशोधनाय च दिशानिर्देशं प्रददाति। शैक्षिकतकनीकेः प्रमुखोपागमौ द्वौ स्तः– स्थूलोपागमः मृदुलोपागमश्च।

**स्थूलोपागमः** – स्थूलोपागमः भौतिकविज्ञानस्य इंजिनियरिंगस्य च सिद्धान्तानामुपर्याधारितोऽस्ति। एतस्योपागमस्य जन्म भौतिकविज्ञानेनाभियन्त्रतकनीक्या

चाभवत्। जनाः मन्यन्ते यत् यावन्तं शिक्षणक्षेत्रे टेपरिकार्टरः, दूरदर्शनं, प्रोजेक्टरश्च न भविष्यन्ति चेत् शिक्षायाः प्रभावोऽपि पूर्णं नैव भविष्यति। स्थूलोपागमः उपर्युक्तानामनिवार्योपयोगस्य धारणां बलयुक्तं कारयति। डेविडमहाभागानुसारेण (1971) स्थूलोपागमः तकनीकीशिक्षणप्रशिक्षणस्य कृते अत्यन्तमावश्यकमस्ति। स्थूलोपागमस्य फलस्वरुपः पत्राचारपाठ्यक्रमस्य च जन्म अभवत्। शोधकार्येषु प्रपत्राणां सङ्कलनस्य विश्लेषणस्य च कृते यन्त्राणामुपयोगोऽपि एतस्योपागमस्य महत्वमस्ति। स्थूलोपागमस्य प्रयोगः सर्वप्रथमं लेमशडेनमहाभागेनाकरोत्। उपागममिदं त्रिषु बिन्दुषु विशेषबलं याति– (1) ज्ञानस्य सञ्चयनम्, (2) ज्ञानस्य प्रसारणम्, (3) ज्ञानस्य विस्तारणञ्च।

**मृदुलोपागमः** – मृदुलोपागमे यन्त्राणां प्रयोगं न कृत्वा शिक्षणस्याधिगमस्य च मनोवैज्ञानिकसिद्धान्तानां प्रयोगः क्रियते। येन बालकानां व्यवहारे अपेक्षितं परिवरितनं करितु शक्येत्। मृदुलोपागमम् अनुदेशन–शिक्षण–व्यवहारतकनीकीनाञ्च नामभिरपि संज्ञा प्रदीयते। उपागमेऽस्मिन् यन्त्रामामुपयोगः केवलं पाठ्यवस्तोः प्रस्तुतिकरणं प्रभावयुक्तस्य कृते क्रियते।

स्थूलोपागमे स्यामपट्टः, ओवरहेडप्रोजेक्टरः, स्लाइडप्रोजेक्टरः, मोनिटरः, सङ्गणकम्, ओडियोरिकार्डरः, श्वेतपत्रञ्चौतेषां प्रयोगः भवति। मृदुलोपागमे सुधाखण्डः, ट्रांसपेरेन्सीज, स्लाइड्स, वीडियोकार्यक्रमः, सङ्गणककार्यक्रमः, रिकार्डेडसामग्रयः, लेखनसामग्रयः च एतेषां प्रयोगः भवति। स्थूलमृदुलोपागमयोः प्रयोगः छात्राणां जिज्ञासाय प्रेरणाय च क्रियते। असौ शिक्षकाणां छात्राणाञ्च समयस्य शक्तीनाञ्च सम्यग्तया उपयोगकरणे समर्थो भवति।

**उपयोगिता**– अधिगमसिद्धान्तानां स्थाने शिक्षणसिद्धान्तान् महत्वदाने विषयवस्तुः, पाठ्यक्रमः शैक्षिकतकनीकी एव विद्यते। शैक्षिकतकनीक्यां स्वाधिकारः स्थापितकरणाय शिक्षकः छात्राणां व्यवहाराणामध्ययनं कर्तुं शक्यते। वांछितपरिवर्तनं कर्तुं शक्यते। शिक्षकस्य कृते पाठ्यवस्तुना सह व्यवहारस्याद्ययनस्य च ज्ञानमपि भवितव्यम्। शैक्षिकतकनीकी अस्मान् शिक्षणस्य विधीनां सिद्धान्तानां वा ज्ञानं प्रददाति। शैक्षिकविषयवस्तुं स्थिरकरणार्थं भिन्नानां प्रक्रियाणामध्ययनं करोति च। छात्रेषु शिक्षणं प्रति प्रेरणायाः, जाग्रतेः, रुच्युत्पादनस्य च कृते सहाय्यं भवति। शैक्षिकतकनीकी शिक्षकस्य, शिक्षार्थेः, प्रशिक्षणस्य च बहूपयोगयुक्तं भवतुं शक्यते। समाजे अधुना जनानं पार्श्वे रेडियो–टेपरिकार्टर–ट्रांजिस्टरेत्यादयः सुविधाः सन्ति। तेषामुपयोगः

शैक्षिकतकनीक्या सहाय्येन एव शिक्षाक्षेत्रे कर्तुं शक्यते। शैक्षिकतकनीकी छात्राणां, शिक्षकाणां, जनानाञ्च ज्ञानात्मक–प्रभावात्मक–मनोगत्यात्मकपक्षाणाञ्च समुचितविकासं करोति।

अत एव शैक्षिकतकनाकी छात्रेभ्यः, शिक्षकेभ्यः समाजस्य च कृते ज्ञानस्य सञ्चयनाय प्रचारप्रसाराय, विकासाय च अत्यन्तोपयोगी वर्तते।

**सन्दर्भाः –**


1. मंगल एस के, मंगल उमा, शिक्षा तकनीकी PHI Learning private limited new Delhi.
2. शर्मा डॉ. ए. आर., शैक्षिक तकनीकी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, उत्तरप्रदेश।
3. मित्तल डॉ. सन्तोष, शैक्षिकतकनीकी एवं कक्षा–कक्ष प्रबन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
4. सिंघल अनुपमा, कुलश्रेष्ठ एस पी, शैक्षिकतकनीकी के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, उत्तरप्रदेश।



सहायकाचार्यः(अ.) शिक्षा

जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थान

संस्कृतविश्वविद्यालयः जयपुरम्

# स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन

– नीतू शर्मा

**प्रस्तावना –**

विवेकानन्द के जीवन दर्शन के प्रमुख तीन उद्‌गम स्रोत थे। प्रथम स्रोत महान वैदिक एवं वैदान्तिक भारतीय विचारधारा थी, द्वितीय स्रोत उनके गुरू राम कृष्ण परमहंस के उपदेश एवं विचार थे तथा तृतीय स्रोत उनका स्वतः का अनुभुत ज्ञान था। उनके जीवन दर्शन की धारा इन्हीं तीनों स्थलों से उद्‌गमित वह स्रोतास्विनी है, जो आज भी मान मन को आतृप्त एवं आहलादित कर रही है। वेद और वेदान्त को पुर्नप्रतिष्ठित कर स्वामी विवेकानन्द ने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय जीवन दर्शन को अमरत्व प्रदान करने वाली भारतीय संस्कृति और धर्म कही अधिक उत्तम और समृद्ध है। भारतीय जीवन दर्शन, पाश्चात्य जीवन – दर्शन का मुखापेक्षी कथापि नहीं है। उन्होंने प्लटो से लेकर स्पेन्सर तक समस्त पाश्चात्य विचारकों के जीवन दर्शन का गहतनम अध्यन किया था तथा इन निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि भारतीय जीवन दर्शन के समक्ष वे बौने है। अतः अपने विचार के लिए वे पश्चिम के किसी विचारक के ऋणी नहीं है। अमेरिका तथा यूरोप पधार कर उन्होंने उनकी ही भाषा में उनको जिस भांति अपने दृष्टिकोण से न केवल प्रभावित किया अपितु एक चुनौती भी प्रदान की, वह लेखबद्ध कर पाना कठिन है। वह मात्र गूंगे का मधुरस का आस्वादान मात्र है। भारतीय वेदान्त को जिस प्रकार उन्होंने नवीन कलेवर प्रदान किया था वह मात्र पीडित अथवा सन्यासियों का शास्त्रार्थ एवं साधना का विषय बनकर ही न रह गया, अपितु भारतीय के नित्य प्रति आचरण करने योग्य विषय बन गया तथा जीवन की सफलता का साधन सिद्ध हुआ। उन्होंने यह मान्यता प्रकट की कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में वेदान्त दर्शन का अनुकरण अपरिहार्य है। इससे व्यक्ति का उत्थान, समाज का निर्माण तथा राष्ट्र में समन्वय होता है। यद्यपि स्वामी विवेकानन्द से पूर्व आचार्य शंकर, रामानुज प्रभृत विद्वानों ने भी वेदान्त की व्यवस्था की थी, किन्तु उनकी व्याख्या इस तथ्य का निरूपण न कर सकी कि किस भांति वेदान्त दर्शन से व्यक्ति के दैनिक जीवन के

क्रियाकलापों को अनुदित किया जा सकता है। किन्तु इस महनीय एवं सर्वजन ग्रहणीय कार्य को स्वामी विवेकानन्द की विलक्षण बुद्धि न बडे ही वैज्ञानिक ढंग से सृजित किया ।

धर्म के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति को विकृत स्वरूप प्रदान करने वाली प्रति गहरी होती जा रही थी। तथा उसकी छाया सघन से सघनतर हो रही थी। उसे स्वामी विवेकानन्द ने निर्मूलएवं विरल कर दिया। उनकी दृष्टि में धर्म साधना का विषय था। इस तथ्य को वे प्रत्येक व्यक्ति में रोपित कर देना चाहते थे। वे धर्म के प्रति अन्धता में विश्वास नही करते थे। वे धर्म को तर्क अथवा युक्ति पर परे नही सोचते थे। उनका विश्वास था कि जो तार्किक एवं विज्ञान सम्मत है वही धर्म है। जो तथ्य किसी की बुद्धि से एवं विचार को प्रभावित न कर सके, जिसमें वैज्ञानिकता का पुट न हो तथा जो अन्तर्मन को प्रभावित न कर सके, उसे वे अनुकरणीय नहीं मानते थे। उनकी मान्यता थी। कि धर्म का प्रधान उद्देश्य आत्मा की प्राप्ति है । यदि कोई इसमें किसी भांति नैतिकता का ह्रास देखता है तो समझना चाहिए कि उसमें मानवीय नही अपितु पाशविक प्रवृति की प्रधानता उत्पन्न हो रही है। जिस पर नियन्त्रण के लिए इतर साधनों की आवश्यकता है। विवेकानन्द ने पाश्चात्य जगत की इस विचारधारा को अश्रेय घोषित कर दिया कि प्रत्येक मनुष्य पापी हैं उन्होनें कहा कि प्रत्येक मनुष्य मूलतः एवं तत्वतः पवित्र है, उसमें दैविक शक्ति विद्यमान है । उसका स्वरूप तो सत्वित और आनन्द का है। उसमें व्याप्त आत्मा एवं दिव्य ज्योति है। वह पापी नही हो सकता । किन्तु जब उसमें माया धनीभूत हो जाती है, जब वह अपने को निर्बल एवं पापी समझने लगता है। स्वामी विवेकानन्द ने समाज को जाग्रत किया, कि वे माया के प्रभाव से बचे तथा अपने उस स्वरूप को पहचाने जो सत् चित और आनन्द से ओत प्रोत है। उन्होनें अपने इस विचार का जब अपने अमेरिकी समुदाय के मध्य प्रस्तुत किया तो वहा के लोगों न केवल इससे अत्यधिक प्रभावित हुए अपितु उनके समक्ष व्याप्त अज्ञानान्धकार उत्पन्न हो गया। उन्हें जीवन दर्शन के वास्तविक स्वरूप का बोध हुआ तथा उन्होनें कहा कि पापात्मा होने के विचार से जो निराशा मनुष्य में छायी रहती है, उसे दूर करने का यही सर्वोत्तम विचार है कि वह अपने तेजोमय भगवान का अंश अथवा उसका प्रतिनिधि समझे ।

विवेकानन्द ने सदैव धर्म के व्यापक अर्थ को ही ग्रहण किया तथा इसके सार्वभौम स्वरूप को ही प्रतिष्ठित करना चाहा। उनके मतानुसार वेदान्त अन्तिम एकता को खोजने का एक साधन मात्र है। इसके अतिरिक्त वह कुछ नही है। जो धर्म निर्माणात्मक है वही धर्म है। विध्वंसमूलक प्रवृत्ति धर्म नही हो सकती। प्रत्येक धर्म के अपने– अपने दर्शन पुराण एवं कर्मकाण्ड है। सबका अपना–अपना मूल एवं महत्व है। मनुष्यों के स्वभाव में भी भिन्नता है। कोई विचारक है तो कोई दार्शनिक, कोई भौतिकवादी है तो कोई रहस्यवादी। ध्यानयोग, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, एवं कर्मयोग इसी भिन्नता के परिणाम है, तथापि सबके उद्देश्यों में आत्मा की प्राप्ति विषयक समरूपता है। उनका जीवन दर्शन का यथार्थ की पीठिका पर आधारित था। उनका कथन है कि जिस व्यक्ति को रोटी के लाले पडे हो वह वेदान्त की और आकृष्ट नही हो सकता। उन्हें अपने महान गुरू रामकृष्ण परमहंस के वे शब्द सदैव याद रहते थे कि धर्म खाली पेट के लिए नही है । अतः उन्होने सबसे पहले इस बात पर विशेष बल दिया था कि दरिद्रों की सेवा की जाय तथा उनके उत्थान का यथाशक्ति प्रयास किया जाए। दरिद्र सेवा के प्रति उनमें जो भावद विद्यमान थे, उनके दर्शन इन पंक्तियों में होते है यदि में एक मात्र ईश्वर की उपासना कर सकूं जिसमें में विश्वास करता हूँ जो समस्त आत्माओं का योग है, जिनका दर्शन समस्त जातियों के पीडित और दरिद्रो में निवास करता है तो मेरी कामना है कि बारम्बार जन्म लू और एक सहस कष्ट उठाऊ।

स्वामी विवेकानन्द वेदान्ती थे। अतः माया के सिद्धान्त में भी विश्वास करते थे किन्तु यहां उनका अभिप्राय यह न था, कि इन्द्रियों से अनुभूत संसार मिथ्या है अपितु उनका विश्वास था कि यह व्याख्या का एक सिद्धान्त नही अपितु तथ्यों का कथन है। इसका आशय केवल इतना है कि ऐन्द्रिक अनुभव संसार अन्तिम वास्तविकता नही है लेकिन वह पूर्ण मिथयामी नही है तो वास्तविकता और जो कुछ दृष्टिगत है उन दोनों का एक सम्मिश्रण है जिसका अस्तित्व केवल हमारे मन और इन्द्रियों के साथ संबंध में ही है तथा उनमे परिवर्तन हो जाने में इसमें भी परिवर्तन हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन केवल आध्यात्म अथवा वेदान्त की परिधि तक ही

सीमित न था अपितु समाज सुधार की ज्वाला में उनके मन में निरन्तर धधक रही थी । सामाजिक सेवा कार्यो को आध्यात्मिक साधना का एक आवश्यक अंग मानना चाहिए। उनकी मान्यता है कि आध्यात्मिक साधना को एक आवश्यक अंग मानना चाहिए। उनकी मान्यता है कि आध्यात्मिक साधना से भी सम्पन्न किया जा सकता है । स्वामी विवेकानन्द ने धर्मान्धता रूढिवाद तथा मिथ्या विश्वासों को निर्मल करने का प्रयास किया। समाज से अपेक्षा थी कि वे कूप मंडूक न बने रहे अपनी आंखों से संसार देखे तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाये। वे समाज सुधार का कार्य सामान्य जनता के बीच से चाहते थे। यदि इसे मात्र कतिपय लोगों तक ही सीमित रखा गया, तो उसका समुचित लाभ प्राप्त नही हो सकता। वे अपेक्षा पूर्ण सुधार व्यवस्था के विरोधी थें वे उन सुधारकों के विरोधी थे जो सुधार का मिथ्या, आडम्बर ओढकर पाश्चात्य जगत की व्यवस्था को लागू करना चाहते थे। उनके मन में अपने देश के सच्चे समाज सुधारकों के प्रति बडी श्रद्धा थी । उनका यह कथन प्रेरणादायक है कि क्या भारत में कभी समाज सुधारकों की कमी रही है ? क्या तुमने कभी भारत का इतिहास पढा है ? रामानुज कौन थे ? शंकर कौन थे ? नानक कौन थे ? चौतन्य कौन थे ? दादू कौन थे ? क्या रामानुज नीची जाति वालों के प्रति लापरवाह थे ? क्या वे आजीवन इस का यत्न नही करते रहे कि नीची जाति वालों को भी अपने सम्प्रदाय में शामिल कर ले ? क्या उन्होने मुसलमानों को अपनी मंडली में मिलाने की कोशिश नही की थी ? क्या गुरू नानक ने हिन्दु मुसलमानों दोनो जातियों को मिलाकर एक बनाना नही चाहा था ? इन सब महापुरूषों ने यत्न किया और आज तक यथावत् विद्यमान है वे मृदुभाषी थे, यथार्थवादी थे। प्राचीनों ने जो मार्ग स्वीकार किया था उसमें हम विमुख हो गये है ।

स्वामी विवेकानन्द राजनीति को एक प्रमाद मानते थे। उनका कथन था कि मैंने जो कुछ कहा अथवा लिखा उसमें किसी को कोई राजनीतिक महत्व नहीं देखना चाहिए। वह मात्र जीवन का यथार्थ पूर्ण उद्देश्य हैं जब कुछ राजनीतिक दलों ने उनके वक्तव्य या लेखन का लाभ उठाना चाहा तो उन्होंने इसका कड़ा विरोध किया। यंत्र–तंत्र उन्होनें प्रसंग वंश राजनीति दर्शन से संबंधित जो भी उल्लेख किये उनसे प्रस्थापित हो जाता है कि वे महात्मा

गांधी की भांति ही राजनीति का आध्यात्मीकरण करना चाहते थे। और उसका स्वरूप जन कल्याण कारक बनाना चाहते थे। उनका विश्वास था, कि जनसामान्य का सर्वविधि विकास करके ही वास्तविक राजनीतिक शक्ति अर्जित की जा सकती है। इसी भांति उन्होनें स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चरित्र तथा शक्ति के विषय में भी अपने दृष्टिकोण व्यक्त किये।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन के प्रमुख दो उद्भव थे। प्रथम स्रोत प्रकृतिवादी विचारधारा थी, द्वितीय स्रोत उनका स्वतः का अनुभूत था । उनके जीवन दर्शन की धारा दोनों स्थलों से उद्गमित वह सोतास्विनी है और आज भी मानव मन को मातृत्व एवं आहलादित कर रही है। प्रकृतिवाद को पुर्नप्रतिष्ठित कर स्वामी विवेकानन्दं ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकृतिवाद ही सत्य सत्ता है। स्वामी विवेकानन्दं की गणना प्रकृतिवादी दार्शनिक के रूप में होती हैं कुछ विचारक मानते है कि स्वामी विवेकानन्दं स्वयं प्रकृतिवादी था, लेकिन प्रकृतिवाद का जनक नही बल्कि प्रकृतिवाद विचारधारा को पूर्णतः योगदान देकर द्रुतगति दी। वे तत्कालीन समाज, आडम्बर और भौतिकता से इतना ऊब गया था, कि उसने प्रकृति की और लौटों का नारा लगाया। प्रकृति के सरलतम्, आडम्बरहीन स्वरूप को उसने महत्व दिया उन्होनें यह भी कहा कि प्रकृति का ही ज्ञान शिक्षा और जीवन का स्रोत है । उनके दार्शनिक विचारों पर उनके कटु अनुभवों की स्पष्ट छाप मिलती है। वह समाज में आडम्बर से दूर प्रकृति का पुजारी बन गया। वे मुक्त, अकृत्रिम और नैसर्गिक जीवन के पोषक थे, उनके अनुसार सभ्यता समस्त दुर्गुण उत्पन्न करती है और दुर्गुणों से दुर्भाग्य की व्युत्पत्ति होती है। अतः हमें इस आवरण को उतार फेंकना चाहिए। सामाजिक बन्धन सदैव स्वार्थपूर्ण होते है। उनमें स्वाभाविकता नही होती। उन्होनें प्राकृतिक राज्य पुरूषद तथा समाज की कल्पना की। उनके अनुसार राज्य जनता की स्वाभाविक इच्छा के विपरीत कार्य करता है। यदि बन्धन से मानव को छुटकारा मिल जाये तो सुख सन्तोष और समृद्धि की प्राप्ति हो सकती है। उन्होनें प्राकृतिक स्वतंत्रता देने से विचार से जनता की स्वतंत्रता, जनता का शासन और जनता के कल्याण हेतु विचार व्यक्त किये। उन्होने कहा था कि "मानव स्वतंत्रता जन्म लेता है, तो उसे नियमों के बन्धन में जकड़ने का कार्य सरकार क्यों करती है ? स्वामी विवेकानन्दं आगे कहते

है कि प्रकृति के विचार सम्भवतः इसी कारण उत्पन्न हुए होंगे, क्योंकि तत्कालीन फ्रान्स का शासक एक अभिजात वर्ग सामान्य जन को कुचल रहा था। उसके जीवन के कटु सत्यों ने इस प्रकार के अनुभव प्रदान किये जिसके कारण वह तत्कालीन वर्तमान व्यवस्था का विरोधी बना। उसके प्रकृतिवाद में उन्मुक्तता, विकास, रूचि एवं क्रियाशीलता का सिद्धान्त प्रच्छन्न था, जो आधुनिक शिक्षा के आवश्यक अंग माने गये।

स्वामी विवेकानन्द ने प्रकृति शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थो में किया था। उन्होनें स्पष्ट किया कि समाज मूर्खताओं का समुच्य है। अतः बालक को समाज की अर्थहीन परम्परा, रूढ़ि एवं वर्जनाओं से पृथक ही रखा जाना चाहिए। उसे मात्र प्रकृति की मनोहरता, निश्छलता ओर पवित्रता से परिचित कराना चाहिए । उन्होनें शिशु की मूल प्रवृति की संरचना के सन्दर्भ में स्पष्ट किया कि "बालक का नैसर्गिक इच्छाओं के अनुरूप स्वतंत्र विकास उसकी उत्तम शिक्षा होती है। अतः शिशु की मूलप्रवृत्तियां ही उसकी शिक्षा का आधार बने, न कि प्रौढ़ मानव के अनुभव । बालक का प्राकृतिक घटकों के सम्पर्क के विषय में विचार व्यक्ति किया कि प्रकृति अपने विविध मोहक रूप जैसे पशु पक्षी, पर्वत झरने, वन, सूर्य, सूर्योदय, नीरवता आदि के रूप में बच्चे के मन में अपने प्रति मोह उत्पन्न करती है । उनके संसर्ग में रहकर जिस बच्चे को पालन पोषण होगा, निश्चय ही वह प्राकृतिक मानव के रूप में विकसित होगा उनके अनुसार प्रकृति मानव तथा पदार्थ इन तीनों से ही शिक्षा प्राप्त करते है। वे इस प्रकार स्पष्ट करना चाहते है कि शिक्षा की प्रमुख समस्या मानव का उसके भौतिक और सामाजिक जीवन से सम्पर्क ही हो सकता है। मानव तथा पदार्थ से जो शिक्षा बालक को प्राप्त होती है वह शिक्षा द्वितीय श्रेणी की होती है। क्योंकि उससे प्राप्त अनुभव दूसरों के होते है किन्तु बालक प्रकृति बच्चे की निहित क्षमता और उसकी आन्तरिक शक्तियों का समभाव से विकास करती है। इस प्रकार वे स्पष्ट करना चाहते है कि प्रकृति मानव तथा पदार्थ तीनों के सन्तुलित सहयोग से प्राप्त शिक्षा की उत्तम हो सकती है। उन्होने प्रकृति को महान शिक्षक माना है। उन्होनें माना कि प्रकृति की क्षमता अनन्त है और अपने सानिध्य में आने वाले सभी को वह इस अक्षय भण्डार प्रदान करती हैं उनके अनुसार मानव की सांस आज मानव के लिए घातक हो गयी है

इस आडम्बर से मुक्ति पान से ही मानव और सभ्यता का विकास हो सकता है ।''

उन्होनें आधुनिक सभ्यता पर गर्व करने वाले लोगों को ललकारते हुए कहा कि आज की जिस सभ्यता पर मनुष्य गर्व कर रहा है, वह सभ्यता मनुष्य के विकास की कब्र है – बड़े–बड़े शहर, आलीशान, भवन, उद्योग, की मानवीय गुणों का मस कर मनुष्यता के लिए कब्र खोद रहा है, और शहरों को विकास का रूप नही मानवता का कब्र कहा है। स्वामी विवेकानन्द के विचार से प्रकृति के यहां यह नियम कभी नही रहा कि अयोग्य योग्य पर शासन करे, और मूर्ख विद्वान को रास्ता बताये, जबकि अपने समाज में यही व्याप्त है। प्रकृति के राज्य में बुद्धि पूर्ण शासन की समुचित व्यवस्था है। वहां सबके विकास की समान सुविधा है। इस समाज की लूट खसोट और झीना झपटी भी वहां नही है, जबकि इस समाज में विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोग ऐसे भी है, जो अपने लिए आवश्यकता से अधिक भर लेते है और भूखे बहुसंख्यक जीवन की नंगी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाते ।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की न्यूनता है, किन्तु उनके विचार भारत तथा भारतीय सीमा से परे उनके व्याख्यानों में प्रकट हुए उनके जीवन में इस भांति व्याख्यानों की बहुलता भी पायी जाती है। इन व्याख्यानों का मुख्य विषय आधार भारतीय वेदान्त दर्शन है। स्वामी जी के भाषणों में भारत की विभिन्न समस्याओं तथा उनके समाधान के लिए विचार भी मिलते है । उन्होनें देश तथा विदेश से अपने मित्रों को बहुत से पत्र लिखे थे, जिनमें देश के लिए कार्य करने तथा देश को ऊंचा उठाने के लिए प्रेरणा रहती थी ।

स्वामी विवेकानन्द में निम्नलिखित ग्रन्थों का स्वयं लेखन कार्य किया था (1) उत्तिष्ठित जाग्रतः ( 2 ) मेरे गुरूदेव और (3) परिव्राजक । इन ग्रन्थों के अलावा उन्होनें विभिन्न विषयों पर जो भाषण दिये थे, वे भी संकलित रूप में प्रस्तुत है । इन व्याख्यान मालाओं के अन्तर्गत कर्मयोग, भक्तियोग, आधुनिक भारत, पूर्व एवं पश्चिम वेदान्त का रहस्य आदि विषयों का समावेश है।

स्वामी जी ने जो पत्र लिखे थे, उन्हें जो उत्तर प्राप्त हुए थे उनको संग्रह भी पत्रावली

नामक पुस्तक में है । रामकृष्ण और विवेकानन्द गुरू शिष्य परम्परा के आदर्श है। स्वामी विवेकानन्द ने गुरु और शिष्य के संबंध में अलग से जो लिखा है, उनके जीवन में उसका मूल रूप उपलब्ध होता है। श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द के आदर्श गुरू थे और स्वामी जी आदर्श शिष्य । विवेकानन्द ने आदर्श गुरू के संबंध में जिन योग्यताओं की परिकल्पना की है वे रामकृष्ण के सन्दर्भ में ही विकसित हुई । स्वामी जी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस को एक ऐसा अवतारी पुरूष मानते थे, जिन्होने भारत वर्ष में गहन भावों की एक तरंग प्रवाहित कर दी।

## संदर्भ सूची–


1. कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पार्ट– 1, 1940, मायावती मैमोरियल संस्करण ।
2. वर्तमान भारत, स्वामी विवेकानन्द, 1949, स्वामी भास्केश्वरानंद ( अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर )।
3. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, स्वामी विवेकानंद, 1 नवम्बर 1951, स्वामी भास्केश्वरानंद (अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर )।
4. जाति, संस्कृति और समाजवाद, स्वामी विवेकानंद 15 अगस्त, 1953 स्वामी भास्केश्वरानंद ( अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर )।
5. शिक्षा, स्वामी विवेकानंद, 25 दिसम्बर, 1964, स्वामी भास्केश्वरानंद ( अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर )।
6. स्वामी विवेकानंद, विनोद, 1966, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6 ।



शिक्षा संकाय

राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय

अलवर

# आधुनिक हिन्दी कविताओं में ग्रामीण जीवन

— कंचन लोटा

**प्रस्तावना** — समय बदलता रहता है। बीता हुआ समय आने वाले समय से बेहतर लगता है। विज्ञान और तकनीक के जमाने में भी पुरातन से लगाव रखना वास्तव में बड़ी बात हैं साहित्यकार हमेशा बीते हुए कल, आज और आने वाले कल तीनों को साथ लेकर चलता हैं अपनी कविताओं में हर समय के युग को जिंदा रखता है, अतः कविताओं के माध्यम से हम युग को जान सकते हैं। आज की हिन्दी कविता समाकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैश्वीकरण सन्दर्भ की विश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति है। वह यथार्थ बोध का वैचारिक समुच्चय है। वह ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सभी समस्याओं की बढ़ती भयावहता का सीधा साक्षात्कार भी कराती है। आज की हिन्दी कविता में जीवनानुभव से प्राप्त होने वाली संवेदनाओं की जगह, सूचना, तकनीकी एवं बाजार ले रहा है। हमारे घर परिवार और मानवीय सम्बन्ध विकेन्द्रित एवं ओझल हो रहे हैं। आज का हिन्दी कवि ग्रामीण जन जीवन एवं आदिवासी जीवनशैली से अपना न केवल नजदीकी रिश्ता बनाते हैं बल्कि अपनी कविताओं में इन सभी सरोकारों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति को प्रमाणित भी करते हैं। उनके जीवन की सहजता और सौंदर्य पर मुग्ध कवि उनके प्रति गहरी संवेदना और लगाव रखते हैं। समय के अनुसार उनके जीवन में आने वाले परिवर्तनों को अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर करते हैं। उनके साथ रहे अत्याचार, शोषण और उनकी उपेक्षाओं के प्रति नाराजगी और आक्रोश भी व्यक्त करते हैं। उनकी समस्याओं को अपनी कविताओं के माध्यम से उद्घाटित करते हैं एवं उनके जीवन में अभाव का जिक्र करते हुए उनकी जुझारू क्षमता और सामाजिक सांस्कृतिक बोध की शक्ति को भी उजागर करते हैं।

**आधुनिक समय की हिंदी कविताएँ:** — आज की हिन्दी कविता की राजनीतिक चेतना ग्रामीण सरोकारों से जुड़ती है। वे आजदी के बाद से लेकर अब तक बनने वाली तमाम सरकारी योजनाओं और नीतियों को गाँव और ग्रामीण जनता की पहुँच से दूर की

वास्तविकताओं से भलीभाँति जानते हैं अर्थात् आज की कविता अपने समय के सच के साथ बीते हुए और आने वाले कल को भी साथ लेकर चलती है। आजादी के इतने सालों बाद भी ग्रामीण परिवेश में बदलाव के नाम चंद चीजें दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति में कवि अपनी कविताओं से चोट करता है। आधुनिक कविताओं ने विविध आयामों को अपने में समेटा है। समाज के अनेक पक्षों को कविता उद्वेलित करती है अतः आधुनिक कविताओं के माध्यम से ग्रामीण जीवन को इस शोध के माध्यम से देखने का प्रयास किया जायेगा। हर देश की अपनी एक पहचान होती है। उस देश में रहने वाले लोग, वहां की संस्कृति, परंपराएं यह उसकी एक विशेषता होती है। भारत की अपनी पहचान का एक सूत्र है गांव। भारत गांव के देश के रूप में प्रसिद्ध है। हर देश में गांव होत हैं परन्तु भारत के लिए यह भी कहा जा सकता है कि वह गांवो में बसता है। अर्थात् भारत की पहचान के रूप में गांव अपने आप में एक विशेषता के रूप में इंगित किए जाते है। यदि भारत को जानना है तो गांव को जानना पड़ेगा क्योंकि भारत की सभ्यता, संस्कृति मूलतः गांव में निवास करती है और भारत का विकास तभी संभव है जब गांव का विकास होगा। सदियों पूर्व जब पहली बार मानव धरती पर आया तब से लेकर आज तक उसने सृजनात्मकता के नवीन आयाम स्थापित किए हैं, अर्थात् उत्तरोत्तर विकास किया है। आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव तक का उसका सफर बौद्धिक स्तर से लेकर व्यवस्था एवं व्यावहारिक स्तर पर अनेक परिवर्तन का सूचक है।

आज मनुष्य अपनी ताकत से समूचे ब्रह्मांड में पहुंच बना रहा है और अपनी उपयोगिता को सिद्ध कर रहा है। हर क्षेत्र राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी आदि में खूब प्रगति और विकास करके नए आयामों को स्थापित कर रहा है। मनुष्य ने अपने अस्तित्व की प्रभावी अभिव्यक्ति अपने कार्य के द्वारा सिद्ध की है और उत्तरोत्तर उसने विकास किया है। प्रारंभ में आदिमानव जंगल में रहता था। धीरे–धीरे उसने विका किया और अपने आसपास के क्षेत्र का अवलोकन किया। कंदमूल, पत्ते खाता था। शिकार करके अपना पेट भरता था। धीरे–धीरे उसने पहिए का, आग का आविष्कार किया। पशु पक्षियों के साथ रहने लगा। उनका उपयोग करने लगा। पशुओं के

साथ–साथ उसने कृषि करना प्रारंभ किया। कृषि करने के साथ–साथ पशुपालन प्रारंभ किया और एक स्थाई जीवन की ओर वह अपना एवं समाज का मार्गदर्शन करता हुआ दिखाई दिया। विशेष रूप से पशुपालन और कृषि ने मानव को एक स्थाई और नवीन जीवन प्रदान किया। इसके बाद मानव समूह में रहकर के कार्य करने लगा। समूह में खेती करने लगा। समूह में निवास करने लगा और इसी सामूहिकता ने गांव नामक संस्था को जन्म दिया। प्रारंभ में छोटे–छोटे भागों पर, अपने हितों के आधार पर संगठन के रूप में समुदाय के रूप में मनुष्य रहने लगा और फिर धीरे–धीरे गांवों का निर्माण हुआ। गांवों को साहित्यकारों ने अपने साहित्य में व्यक्त किया है। यदि कविता की बात करें तो आधुनिक कविताओं में ग्रामीण जीवन के विविध पहलु दिखाई देते है।

**हिन्दी कविताओं में ग्रामीण जीवन :–** इस विषय के माध्यम से ग्रामीण जीवन को हिन्दी कविताओं के झरोखे से इस शोध में देखने का प्रयास किया जायेगा। हिन्दी कविता की प्रदीर्घ यात्रा में हर दौर और हर पीढ़ी के कवित अपनी तरफ से कुछ नया जोड़ते रहे है। 1980 के बाद उभरकर आए कवि भी अपने साथ एक ताजगी लेकर आए। जैसा कि हर नई कवि पीढ़ी के साथ होता है। बासीपन लेकर कोई नहीं आता। प्रतिभावान नए कवि की ताजगी का अर्थ उसकी सृजनात्मक मौलिकता से है। काव्य पथ तो पुराना और चिर परिचित था लेकिन रास्ता नया था। पिछली सदी का नौवाँ दशक। अधिकतर कवि गाँव–कस्बा में रहकर कविता लिख रहे थे। कविता एक बार फिर ग्राम – केन्द्रित होने लगी – 'भारत माता ग्राम वासिनी', केदारनाथ सिंह का गाँव कई वर्ष पहले छूट चुका था मगर शब्दो में ग्राम–गंध बची हुई थी। त्रिलोचन, विजेन्द्र, ज्ञानेंद्रपति इसी भूमि पर कविताएँ लिख रहे थे। अरूण कमल की कविता में धान की कटी हुई जड़े चमक रही थी। राजेश जोशी भोपाल के कस्बाई लोक की जीवत अभिव्यक्ति के लिए यहां याद किए जा सकते है। मंगलेश डबराल का 'पहाड पर लालटेन' वाला विंब बहुत दिनांक तक पाठकों और इन युवा कवियों को प्रभावित करता रहा। केवल हिंदी कविता में नहीं बल्कि भारत की सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य तथा वैश्विक परिदृश्य में 1990 की भूमिका महत्वपूर्ण है। रूस का मॉडल टूटकर बिखर रहा था। विश्वभर में वामपंथी

व्यवस्थाएँ एक–एक कर ढह रही थी। यद्यपि व्यवस्था की विफलता विचार की विफलता नहीं थी। लेकिन दृष्टि के सामने साकार के ढहने का प्रभाव पहले पड़ता है। निराकार के बचे रहने का संतोष तो बाद में होता है कुछ–कुछ वैसी ही स्थिति बन पड़ी थी जैसे स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों, यथा–रामधारी सिंह 'दिनकर', बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि के सामने थी कि अब क्या लिखे। उन कवियों का काव्य–पतन तो 'हारे को हरिनाम' और 'कोयला और कविता' तक पहुँचा, लेकिन 1990 के बाद इन युवा कवियों ने हरिनाम की आध्यात्मिक शरण लेने के बजाय अपने गाँव–कस्बों को देखना आरंभ किया। कविता इससे पहले या तो 'रणभूमि' में थी या महानगर केन्द्रित। यह 'ग्राम वासिनी भारत माता' की खोज थी। कविता में भारत की खोज। डिस्कवरी ऑफ इंडिया भारत में भारत ही था, इंडिया नहीं था। कविता के संसार में यह पहले भी हुआ था लेकिन बीच में कुछ वर्षों का मार्ग–विचलन तो था ही। यह उस रास्ते पर पुनः वापसी थी। लेकिन अब कदम नए थे। आहटें नई थी। उनकी पदचाप, पद चिन्ह नए थे।

**निष्कर्ष :–** ''आधुनिक हिन्दी कविताओं में ग्रामीण जीवन'' यह विषय अपने आप में बहुत महत्व रखता है। क्योंकि सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण जीवन में क्या–क्या परिवर्तन आ रहे हैं वे सब आधुनिक कविताओं में उभर कर आए हैं। इन सब पक्षों को इसके माध्यम से देखकर कुछ नई स्थापनाएं करने का प्रयास किया जायेगा। साहित्य और समाज दोनों को समृद्ध करता है और लोगों को जागृत भी करता हैं। परन्तु अब भी जिस प्रकार समाज में राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएं मौजूद हैं उनके अनेक कारण पूर्व से ही दिखाई देते हैं और कुछ कारण आधुनिक भी हैं। आधुनिक हिन्दी कविताओं में कवि इन समस्याओं को उठा चुके हैं।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –**

1. प्रियदर्शनः ग्लोबल समय में कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, (2014)।
2. एकात श्रीवास्तवः बढ़ई, कुम्हार और कवि, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, (2013)।
3. परमानंद श्रीवास्तवः उत्तर समय में साहित्य, सुरभि प्रकाशन दिल्ली, (2010)।

4. विनय विश्वासः आज की कविता, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, (2009)।

5. राजेश जाशीः एक कवि की नोट बुक, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, (2004)।

6. अभय कुमार दुबेः लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन दिल्ली, (2005)।

7. सच्चिदानन्द सिंहाः संस्कृति और समाजवाद, वाणी प्रकाशन दिल्ली, (2010)।

8. परमानंद श्रीवास्तवः कविता का उत्तर जीवन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, (2004)।

9. राजेश जोशीः समकालीनता और साहित्य, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, (2010)।

10. राजकिशोरः मीडिया और हिन्दी साहित्य, किताब घर प्रकाशन दिल्ली, (2009)।

11. स्वामी सहजानंद सरस्वतीः खेत मजदूर और झारखण्ड के किसान, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन दिल्ली, (2001)।

12. अंजनी कुमार झाः ग्राम विकास और समाजवाद, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, (2017)।

सहायकाचार्या
श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
अलवर

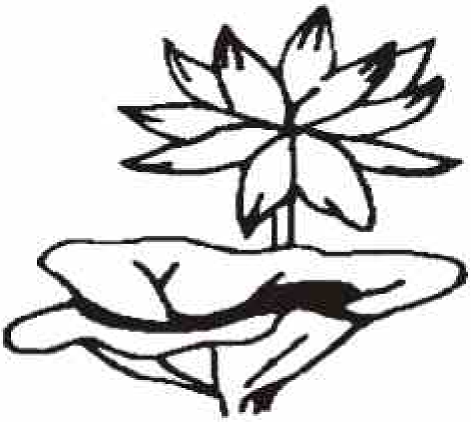

# पं० सम्पूर्णदत्त मिश्रस्य रचनासु अलंकार प्रयोगः

— डॉ. गेहप्रदीप शर्मा

पण्डितसम्पूर्णदत्तमिश्रस्य रचनासु अन्योक्ति – अलंकारस्य प्रयोगोपि सूक्तिपंचामृते प्राप्यते । उदाहरणार्थं कतिपयपद्यानि उल्लेखनीयानि सन्ति । तद्यथा –

**सौख्यावह–स्वजन–संसदि जीवतो मे,**
**चित्त! त्वमेव परमं शठ! शत्रु–भूतम्।**

**यस्यां पुनर्भुवन–नश्वरता–स्वभावं,**
**संस्मारयद्विचलि तं कुरुषे ह्यकाले।**

**रे रे! जातक! मद्वचरू शृणु, सखे सन्तापितरू सङ्कटैरू,**
**कातर्येण समुञ्छ्वसन्न कुरु ताम् वैराग्यबुद्धिं वृथा।**

**सद्वर्गेषु निवेदयन्व्रज निजं कामं प्रकामं यतरू,**
**को जानाति तवेप्सितार्थफलदो वीररू कुतो राजते।**

**यस्याश्चेतसि राग बीमनिशं जागर्ति जीमूत! रे!,**
**कामोद्दीपनकारकप्रकरणे तामेव सन्तापयेत्।**

**हा! जीवत्पतिकाऽस्मि मुक्तपतिका धिक्तं च तच्चिन्तनम्,**
**स्वच्छन्दं स्वन गर्ज तर्जय मया भस्मीकृता वासना।**[1]

उपर्युक्त उदाहरणत्रये क्रमशरू अप्रस्तुतं चित्तं जातकं जीमूतम् च सम्बोध्य पृथक–पृथक् कथनानि प्रस्तुतार्थानां बोधाय प्रस्तुतानि सन्ति। तेन एषु उदाहरणेषु अन्योक्तिरू अलंकारो ध्वन्यते।

## विनोक्तिरू अलंकारः –

अन्यत् अपरं वस्तु पदाथर्रू अन्येन विना अपरेण पदार्थेन विना यत् असाधु अशोभनं न

[1] काव्यालंकार, पं.सम्पूर्ण.सूक्तिपञ्चामृतम

भवति अर्थात् शोभनं भवतीति भावरू तथैव अन्यत् वस्तु अन्येन विना असाधु अशोभनं भवति वा सा विनोक्तिरू।

पं० सम्पूर्णदत्त मिश्र विरचितायां सम्पूर्णात्मव्यथाकथायां केषुचित् स्थलेषु विनोक्ति–अलंकारस्य प्रयोगा दृश्यन्ते। उदाहरणार्थ अधोलिखितं पद्यं प्रस्तूयते –

**त्वां चन्द्र शेखर – बुधो यदि संस्कृतज्ञं,**
**सम्मन्यते युवकमीदृशमात्तविद्यम्।**

**साक्षात्कृतेरनुमतिं तदनु प्रदास्ये,**
**त्वायोगसम्मुखमवेहि न तद्विनाहम्।**[2]

अस्मिन् उदाहरणे अनुमतिं विना अपि अहम् आयोगरू सम्मुखम् उपस्थितरू इति कथने अपेक्षाभावात् शोभनत्वं लक्षणया बोध्यते। अनेन च विनोक्ति – अलंकारस्य विद्यमानता स्वीकर्तुं शक्यते।

## व्यंगोक्तिरू अलंकारः –

अयम् अलंकाररू अपि उक्तिवैचित्र्यमूलकरू अलंकारो ऽस्ति। अत्र व्यंगस्य माध्यमेन कथनस्य प्रस्तुतिर्भवति। अयं हि व्यंगरू क्वचित् उपालम्भरूपरू क्वचित् च उपहासमूलकरू विद्यते। अतरू अस्य अलंकारस्य प्रवृत्तिरू द्विधा स्वीकृता अस्ति।

पं० सम्पूर्णदत्त मिश्रस्य सूक्तिपंचामृते व्यंगोक्तीनाम् प्रयोगारू उपलभ्यन्ते। तद्यथा –

**लज्जां मुञ्च कुरु प्रपञ्चमचलं चाटूक्तियुक्तरू सदा,**
**सर्वत्र प्रसरं विधेहि महतां मानं मुदा मर्दयन्।**

**दैन्यं दर्शय कुत्रचित्क्वचिदहङ्कारम् धनोपार्जने,**
**स्वार्थं साधय सर्वथाऽखिलजगद् भ्राष्ट्रे वरं भृज्ज्यताम्।**

अस्मिन् उदाहरणे चतुर्थचरणे स्वार्थसाधकं मनुष्यं प्रति अखिलजगत् भ्राष्ट्रवरं भृज्ज्यताम् इत्युक्तिरू व्यंगरूपेण कथिता अस्ति। इयं व्यंगोक्तिरू उपहासमूला अस्ति।

## आक्षेप अलंकारः –

---

[2] काव्यालंकार

विच्छित्तिविशेषमूलकरू अयं अलंकाररू भवति। अस्मिन् अलंकारे विवक्षितस्य विषयस्य ज्ञानविशेषाय अवास्तविकरू निषेधरू क्रियते। अस्य अलंकारस्य लक्षणं साहित्यदर्पणे निम्नानुसारं प्रतिपादितम् अस्ति –

**वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये।**
**निषेधाभास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्तगो द्विधा।।**

अर्थात् यदा वक्ता स्वाभीप्सितस्य वस्तुनरू विशिष्टज्ञानाय निषेधसदृशं कथनं प्रस्तौति तत्र अयम् अलंकारो भवति।

पं० सम्पूर्णदत्त मिश्रस्य रचनासु सूक्तिपंचामृते सम्पूर्णात्मव्यथाकथायां च आक्षेपालङ्कारस्य प्रयोगारू उपलभ्यन्ते। उदाहरणार्थं सम्पूर्णात्मव्यथाकथाया निम्नांकितं पद्यं उल्लेखनीयम् अस्ति –

**यरू कोऽपि वासमधिगच्छति हिन्ददेशे,**
**हिन्दु तमेव मनुते त्वित आडवाणी।**

**लोभात्मनां कलितया परिभाषयैवं,**
**हिन्दुर्भवत्यहह! मुस्लिमजातिकोऽपि।।**[3]

अस्मिन् उदाहरणे चतुर्थचरणे प्रयुक्तरू अपिशब्दरू तात्पयार्थनिर्धारणे निषेधाभासस्य प्रतीतिं जनयति। अतरू अत्र आक्षेपालङ्काररू स्वीकायर्रू अस्ति।

## दीपक अलंकारः –

प्रस्तुताप्रस्तुतयोरू धर्मविशेषेण सम्बन्धरू दीपकालंकारे आधारभूतो भवति। अत्र सहकारिरूपेण क्रियाकारकसम्बन्धोपि निहितो भवति। साहित्यदर्पणे अस्य लक्षणं निम्न प्रकारेण प्रस्तुतम् –

**अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।**

अर्थात् –

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोरू पदार्थयोरू एकधर्माऽभिसम्बन्ध इति पदं पूर्वकारिकया अनुवर्तते। एकस्मिन्धर्मे (गुण–क्रियारूपे) अभिसम्बन्धो दीपकं निगद्यते अभिधीयते।

---

[3] पं.सम्पूर्ण.सूक्तिपञ्चामृतम्

पं० सम्पूर्णदत्त मिश्र विरचिते सूक्तिपंचामृते रासनायकनायिके च दीपकालंकारस्य उदाहरणानि प्राप्यन्ते। तत्र सूक्तिपंचामृते यथा –

**वात्याऽन्तिके वियति भीषणवर्षणाग्रे,**
**दुष्टात्मनां मनसि संकट–सन्निधाने।**

**ओजस्विनामुरसि निर्णयकाल एति,**
**निरूस्तब्धता च जडता च सुधीरता च।।**

अस्मिन् उदाहरणे प्रकृतिस्थितिवर्णनं प्रस्तुतवस्तुरूपम् अस्ति। दुष्टात्मनामोजस्विनां च स्थितिवर्णनम् अप्रस्तुतवस्तुरूपं वर्तते। प्रतिक्रियारूपेण धर्मेण प्रस्तुताप्रस्तुतयोरू सम्बन्धोपि अत्र दर्शितो ऽस्ति। निरूस्तब्धता – जडता – सुधीरतानाम् अनेककारणानां एति इत्यनेन एकेनैव क्रियापदेन सम्बन्धो ऽपि विद्यते, येन दीपकालङ्कारो ध्वन्यते।

## व्यतिरेकरू अलंकारः –

अयम् अलङ्काररू परिमाणमूलकरू प्रतिपादितरू। अत्र उपमानोपमेययोरू एकस्य न्यूनतया आधिक्येन वा वर्णनं विहितं भवति। अस्य लक्षणम् यथा –

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा।

अर्थात् उपमानात् उपमेयस्य आधिक्यम् उत्कषर्रू अथवा न्यूनता अपकषर्रू वर्ण्यते चेद्व्यतिरेकरू भवति।

सूक्तिपंचामृते व्यतिरेकालङ्कारस्य प्रयोगरू बाहुल्येन विहितरू। उदाहरणार्थम् अधोलिखितं पद्यं दर्शनीयम् अस्ति –

**भाषन्ते के समाने ननु विषम इमे कामिनी–काञ्चने? सा,**
**नारी रम्याऽनुभावा नर–वश–करणी योजना काऽपि धातुरू ।**

**आलापैर्वा कटाक्षैरपि पुरुषवररू पादपाताऽऽतुररू स्या–**
**न्निर्जीवं काञ्चनं तत्कियदपि सुखदम् चुम्ब्यते नो नरीव ।**

अस्मिन् उदाहरणे उपमेयस्य कामिन्यारू वर्णनम् उपमानस्य काञ्चनस्य वर्णनापेक्षया आधिक्येन विहितरू अस्ति। एवं च नारी स्वर्गाद् विशिष्यते इति तात्पर्येण काञ्चनस्य वर्णने गुणगताया न्यूनताया नैसर्गिक आभासो भवति, येन अत्र व्यतिरेकालङ्काररू प्रतीयते।

## विषमरू अलङ्कारः –

अयम् अलंकाररू विरोधमूलको ऽस्ति। अस्मिन् अलंकारे हेतुकार्ययोर्मध्ये गुणगतं क्रियागतं वा विरोधं प्रदर्श्य विषमतायारू प्रतिपादनं विधीयते। साहित्यदर्पणे अस्य लक्षणं निम्न प्रकारेण प्रतिपादितम् अस्ति –

**गुणक्रिये वा चेत्स्यातां विरुद्धं हेतुकार्ययोरू।**
**यद्वारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवरू।**
**विरूपयोरू संघटना या च तद्विषमं मतम्।**

सूक्तिपंचामृते अस्य उदाहरणं यथा –

**श्यन्ते ये सुजन! सुजना दुरूखसन्तापमग्ना,**
**जानीह्येतान्विगतजनुषां पापिनोऽत्र प्रसूतान्।**

**तेऽद्य स्वाद्यप्रतिफलवशात्सौख्यमाप्तुं न शक्तारू,**
**प्रायो दृष्टं कलियुग इदं साधुसृष्टेरू रहस्यम्।**[4]

अस्मिन् उदाहरणे वर्तमाने विद्यमानानां सज्जनानां जन्मान्तरकृतपाप वशात् पापित्वं वर्णितम् अस्ति। अत्र गुणगतविरोधो विद्यते। चतुर्थचरणे च रहस्यं दृष्टमित्यत्र क्रियागतरू विरोधो ऽस्ति। यतो हि रहस्यं ज्ञायते न तु दृश्यते। एवं चेत् अत्र विषमालङ्काररू विद्यते।

शोधसलाहकारः अनुसन्धान केन्द्र
जगद्गुरू रामानन्दाचार्य राजस्थान
संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

[4] सूक्तिपञ्चामृतम्

# बालकों की उपलब्धि से सम्बन्धित कारक एवं विधिया

— देवेन्द्र यादव

1. **शिक्षक छात्र सम्बन्ध** — कक्षा के सामाजिक वातावरण की एक महत्वपूर्ण विमा शिक्षा तथा छात्र के बीच का सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध जितना ही अधिक सुल होता है, कक्षा का सामाजिक वातावरण को उतना ही अधिक उन्नत माना जाता है। साथ ही इसका स्वस्थ एवं सकारात्मक प्रभाव छात्रों की शैक्षिक उपलिब्ध पर पड़ता है।

2. **छात्रों के बीच सम्बन्ध** — किसी कक्षा की दूसरी विमा छात्राों के बीच वापसी समबन्ध हैं जिस कक्षा का यह सम्बन्ध संतोषप्रद होता है, वहाँ के सामाजिक वातावरण को उतना ही बेहतर समझा जाता है। शिक्षा की सफलता तथा छात्रों की संतोषप्रद शैक्षिक उपलिब्ध के दृष्टिकोण से यह विमा काफी महत्वपूर्ण है।

3. **विद्यालय के कर्मचारियों के साथ सम्बन्ध** — यह कक्षा के सामाजिक वातावरण का एक आवश्यक अंग है। इसका अर्थ यह है कि विद्यालय के कर्मचारियों के साथ शिक्षक तथा छात्र के कैसे सम्बन्ध है और कर्मचारियों के बीच आपसी सम्बन्ध कैसा है? इस वातावरण का प्रभाव भी बच्चों की शिक्षा पर निश्चित रूप से पडता है।

4. **भौतिक सुविधाएँ** — विद्यालय के सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत भौतिक सुविधाओं का उल्लेख भी किया जाता है। विद्यालय का भवन कैसा है, बच्चों के बैठने के डेस्क कैसे हैं, पीने के पानी का कैसा प्रबन्ध है, खेलने का मैदान कैसा है, इन सारी बातों का आकंलन भौतिक सुविधाओं के संदर्भ में किया जाता है। सामाजिक वातावरण के इस पक्ष का भी गहरा प्रभाव बच्चों की शिक्षा तथा शिक्षकों के अध्यापन पर पड़ता है।

5. **बाह्य वातावरण के साथ सम्बन्ध** – विद्यालय जिस स्थान पर अवस्थित है, उसके आस–पास के बाह्यय वातावरण का प्रभाव भी कक्षा के सामाजिक वातावरण पर पड़ता है। अतः छात्रों तथा शिक्षकों की शिक्षा तथा अध्यापन पर क्रमशः इसका भी गहरा प्रभाव पड़ता है। कक्षा के सामाजिक वातावरण का प्रभाव कक्षा के अध्यापन तथा शिक्षण पर निम्नलिखित रूपों में पड़ता है।

   1. **छात्रों के शिक्षण पर प्रभाव** – जब कक्षा का सामाजिक वातावरण बेहत्तर होता है तो इसका अच्छा प्रभाव बच्चों के शिक्षण पर पड़ता है, जिससे उसकी शिक्षा बेहत्तर बन जाती है। लेकिन, इस वातावरण के दोषपूर्ण होने पर बच्चों का शिक्षण अच्छा नहीं हो पाता है और वे समस्यात्मक बन कर रह जाता है।

   2. **शिक्षक के अध्यापन पर प्रभाव** – कक्षा का सामाजिक वातावरण जब स्वस्थ तथा अनुकूल होता है तो शिक्षकों का अध्यापन भी संतोषप्रद तथा प्रभावी होता है। इस वातावरण के दोषपूर्ण या अस्वस्थ होने पर शिक्षक अपने बच्चों को सही शिक्षा देने में सफल नहीं होते है।

   3. **मनोवृत्ति पर प्रभाव** – जब विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण अच्छा होता है तो छात्र तथा शिक्षक में अनुकूल मनोवृत्तियों का निर्माण होता है। लेकिन इस वातावरण के दोषपूर्ण होने पर प्रतिकूल मनोवृत्ति का निर्माण होता है जो बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि के मार्ग में बाधक सिद्ध होता है।

   4. **सामाजिक सीखना पर प्रभाव** – जब विद्यालय कया कक्षा का सामाजिक वातावरण स्वस्थ होता है तो बच्चों में शैक्षिक उपलिब्ध अधिक पायी जाती है क्योंकि सामाजिक व्यवस्था अनुकूल होती है।

   5. **समूह क्रियाओं पर प्रभाव** – विद्यालय या कक्षा सामाजिक वातावरण स्वस्थ होता है तो समूह क्रियाएँ भी अनुकूल होती है, जिससे छात्र तथा

शिक्षक दोनों सामूहिक जीवन सफलता के साथ गुजारने में सफल होते हैं। लेकिन, विद्यालय तथा कक्षा के सामाजिक वातावरण के अस्वस्थ होने पर सामूहिक जीवन भी दुखद बन कर रह जाता है।

अतः विद्यालय तथा कक्षा के स्वस्थ सामाजिक वातावरण से स्वस्थ शिक्षा के साथ–साथ जीवन के अन्य पक्षों को स्वस्थ होने में सहायता मिलती है।

**कक्षा के समूह – सम्बन्ध के सुधार की विधियाँ** – कक्षा–परिस्थिति में समूह तथा समूह–गत्यात्मकता के अध्ययन की आवश्यकता है। हम यह भी देख चुके हैं कि कक्षा या वर्ग भी एक सामाजिक समूह है। अतः शिक्षा एवं अध्यापन की सफलता समूह–सम्बन्धों पर आधारित है। अब प्रश्न यह उठता है कि कक्षा में समूह–सम्बन्ध को कैसे बेहत्तर बनाया जाए ताकि अध्यापन कार्य समुचित रूप से संभव हो सके और बच्चे उस अध्यापन से लाभान्वित हो सकें। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जा सकता है।

1. **अच्छे शिक्षक** – कक्षा रूप समूह का संचालक शिक्षक है। अतः कक्षा के समूह सम्बन्ध को बेहतर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक अच्छे हो। इसका अर्थ यह है कि शिक्षक में अपेक्षित योग्यता हो, छात्रों को समझने की क्षमता हो, पक्षपात के रोग से मुक्त रहने की योग्यता हो, आकर्षक भाषा हो तथा परिहास की क्षमता हो।

2. **समूह – विवेचन** – कक्षा के अन्तर्गत समूह के सदस्यों के आपसी सम्बन्धों के सुधार के लिए छात्रों के बीच समूह – विवेचन का आयोजन किया जाना चाहिए। भिन्न–भिन्न विषयों पर सेमिनार, सिम्पोजियम आदि आयोजित किया जाना चाहिए, जिसमें बच्चे सक्रिय रूप से भाग ले सकें। इससे छात्रों में सहयोग, सहानुभूति, भाईचारा की भावना, आदि शीलगुणों का विकास हो सकेगा। ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे विषयों पर वाद–विवाद न किया जाए, जिससे छात्रों के बीच सामाजिक तनाव या संघर्ष के भड़कने की संभावना हो।

3. **शैक्षिक भ्रमण** – कक्षा के अन्तर्गत समूह–सम्बन्ध को श्रेष्ठ बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि यदा–कदा शैक्षिक भ्रमण की व्यवस्था की जाए। इससे विद्यार्थियों में सहयोग का भाव विकसत हो सकेगा। उन्हें एक–दूसरे को नजदीक से देखने और समझने का अवसर मिल सकेगा। इससे उनके पारस्परिक सम्बन्धों के बेहत्तर होने में निश्चित रूप से मदद मिल सकेगी।

4. **उचित संचार** – छात्रों के पारस्परिक सम्बन्ध को बेहतर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि संचार का उचित व्यवस्था की जाए। शिक्षालय में ऐसी व्यवस्था हो कि शिक्षक तथा विद्यार्थी एक–दूसरे के साथ आसानी से सम्पर्क स्थापित कर सकें। यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थिंयों के बीच सहज संचार संभव हो। यह भी जरूरी है कि शिक्षक से शिक्षार्थी की ओर तथा शिक्षार्थी से शिक्षक की ओर की व्यवस्था की जाये। इसके अलावा शिक्षार्थी तथा शिक्षार्थी के बीच और शिक्षक तथा शिक्षक के बीच क्षैतिज संचारों की व्यवस्था भी आवश्यक है।

5. **परामर्श केन्द्र** – कक्षा में समूह सम्बन्ध को बेहतर बनाने के लिए शिक्षालय में सलाहकार की व्यवस्था आवश्यक है। सलाहकार को मनोवैज्ञानिक तथ्यों से अवगत होना चाहिए ताकि वह कुसमायोजित बच्चों की समस्याओं को समझ सके तथा उनका निराकरण कर सके। स्पष्ट हुआ कि उपर्युक्त विधियों का उपयोग करके कक्षा के अन्तर्गत समूह–सम्बन्धों को बेहतर बनाया जा सकता है ताकि अध्यापन कार्य सफल हो सके और बच्चों को शिक्षा से अधिक–से–अधिक लाभ मिल सके।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची** –

1. गुप्ता, अल्पना (2001), ए क्रास कल्चर प्रिसपेक्टिव ऑफ मोरल वैज्यूज एण्ड चिल्ड्रेन, इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एवं एजूकेशन ।

2. कपिल, एच० के० (1981) रिसर्च मैथड इन विहेवियर साइन्स : विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

3. पाठक, पी० डी० (1982) शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तः विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

4. रूहेला, सत्यपाल (2009) मूल्य शिक्षाः क्या, क्यों, कैसे ? अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

सहायकाचार्य
श्री जैन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
अलवर

# वेदेषु अग्नितत्त्वस्य वर्णनम्

– मनीषमोदगिल

**प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।**
**एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।**

इष्टप्राप्ति अनिष्टपरिहारयोः लौकिको उपायो यो वेदयति सः वेदाः। संस्कृतसाहित्ये वैदिकसाहित्यस्य वैशिष्ट्यं सुविदितमेव। तत्र वेदानां स्थानं सर्वोपरि वर्तते। स च वेदो वैदिकवाङ्मयच्च समुद्रवदपारमागाधं हिमालयवत् दृढश्च। आम्नायः आगमः श्रुतिः वेद इति सर्वे शब्दाः परस्परं पर्यायाः। ज्ञानार्थको वेद इत्येतत्परं विद् धातोःघञि प्रत्यये कृते निष्पद्यते। वैयाकरण–सिद्धान्तकौमुद्यां तु चुरादिप्रकरणे चतुर्ष्वर्थेषु विद् धातोः प्रयोगोऽस्ति। तद्यथा सतायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे विदन्ते विदन्ति प्राप्तौ श्यन्लुक्शनम्शेविदं क्रमात्।

उक्तार्थानां वाचकात् विद्धातोः वेद इत्येतत्पदस्य निष्पादनो भवति। सत्तार्थक–विदधातोः घञ् प्रत्ययानिष्पन्नस्य वेद इत्येतत्पदस्य अर्थो भवति दृ विद्यते सत्तां गृहणाति वस्तु अनेन इति वेदः। देवैरपि समादृत सद्भिरात्रते देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः। यज्ञाद्यवसरेषु ब्राह्मणप्रयुक्तैर्मन्त्रैशवाहनादिविधिना आवाहिताः। देवतास्तत्र–तत्र समागच्चन्त्यैवात्र श्रुतिरेव प्रमाणम्। यज्ञो हि वेदानां विशिष्टः पक्षः अथ च वेदमन्त्रान् विहाय यज्ञ असम्भवः तस्मिन् यज्ञे अग्निः मुख्यरूपेण विराजते। तस्यैवाग् तत्त्वस्य वर्णनं पत्रेऽस्मिनन् यथाज्ञानमुपनिबद्धम्।

अग्रणीर्भवति अङ्गं नयति सन्नयमानः इति निरुक्तानुसारेण अग्रे गन्तुं प्रेरयति, नयति, शरीरोन्नतिं, आत्मोन्नतिं च करोतीत्यग्निः। सम्पूर्णेऽस्मिन् विश्वे यत्र कुत्रापि गति–प्रकाश–प्रगतीत्यादयः दृश्यन्ते तत्र सर्वत्र अग्निरेव कारणम् उत वा अग्निदेवस्य प्रतापदेव उपरोक्तं सर्वमित्यपि वक्तुं शक्यते।

वैदिकवाङ्मये अग्निदेवस्य भूरिचर्चा कृताऽस्ति। तत्राग्निदेवस्य त्र्यशीतिरुत्तरचतुःशताधिकद्विसहस्रपरिमिताः मन्त्राः प्रोक्ताः सन्ति। वेदेषु अग्निदेवस्य यद्विराटस्वरूपं वर्णितमस्ति तदित्थम् –

**चत्वारिश्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।**
**त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश।।**[1]

स चायमग्निः विभिन्नेषु स्वरूपेष्वासंसारे व्याप्तः। जले विद्युद्रुपेण, वृक्ष–वनस्पत्यादिषु उष्मारूपेण, मानवेषूर्जाशक्ति दृरूपेण। यथोक्तमाथर्वणे –

**रक्षन्तु त्वाऽग्नयो ये अप्स्वन्तः।**[2]
**दिवं पृथ्वीमन्तरिक्षं ये विद्युतमनु संचरन्ति। ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तः।**[3]
**ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरेष ये अश्मसु। य आविवेशोधीर्यो वनस्पतीन।**[4]

अयं हि अग्नि द्युलोके सूर्यः, अन्तरिक्षलोकेविद्युत्, पृथ्वीलोके अग्निरूपेण च विश्रुतः त्रयाणामेव प्रकारान्तरो विद्यते दृ जातवेदाः, वैश्वनारः, रुद्रश्च। तत्र द्युलोके, भूलोके, वृक्षवनस्पतीषु सर्वेषु स्थलेषु अग्नि विशिष्टदेवत्त्वेन वर्णितः।

**प्रोक्तञ्च –**

**पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।**
**वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम्।।**[5]

**अग्ने यते दिवि वचः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।**
**येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स मानुर्णवो नृचक्षाः।।**[6]

ऋग्वेदे अग्निः श्रेष्ठऋषिस्वरुपेणोल्लिखितः, यच्च ज्ञान–विज्ञानप्रसाराय सर्वत्र उद्दीप्तं भवति, तदुक्तम् – ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे।

[1]शुक्लयजुर्वेदः17.91।
[2]अथर्ववेदः 8.1.11।
[3]तत्रैव 3.21.7।
[4]तत्रैव 3.21.1–2।
[5]शुक्लयजुर्वेद काम्वसंहिता 20.42।

**यजुर्वेदीय मन्त्रे साक्षाद्रूपेण अग्नेर्देवत्वं स्वीकृतः, तत्र प्रोक्तं – अग्निर्देवता इथि।**

अग्निः सर्वेषां देवानामात्मा, सर्वैः देवैः सह अग्नेः नित्यसम्बन्धत्त्वादग्निः सर्वदेवमयः। सर्वे देवा देव्यश्च अग्नेरेव स्वरूपाः। स्वरूपभिन्नतावशात् सर्वे, नाम–कर्म–गुणाश्च भिन्नाः सन्ति, परन्तु समेषां मूलमग्निरेव। ऋग्वेदे वर्णितं यद् इन्द्र – विष्णु – ब्रह्म – मित्रा – वरुण – अर्यमा – त्वष्टा – रुद्र–मरुत–पूषा–सविता–भगेत्यादयः सर्वे अग्नि एव सन्ति। ऐतरेयब्राह्मणे ऽपि सुस्पष्टं प्रोक्तं यद् वाय्वादयः सर्वे देवा अग्नेरेव स्वरूपाः वर्तन्ते। अग्नितत्त्वादेव वायुः गति शीलोऽस्ति। यथोक्तम् –

**त्वमग्न इन्द्रः, विष्णुः, ब्रह्मा, राजा वरुणः, मित्राः, अर्यमा, रुद्रः, मारुतम् पूषा, सविता, भगः।[7]**

**त्वमग्ने अदितिः, भारती, इडा, सरस्वती,।[8] त्वं पुत्रो भवसि, त्वं सखा।[9]**

**अग्निर्वै सर्वाः देवताः।[10] सर्व देवत्योऽग्निः।[11] अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा।[12]**

**अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो यदेताः देवताः।[13]**

**ब्राह्मणग्रन्थेषु ब्रह्म–त्रिवष्टत–रुद्रेति नाम्नाप्यग्निर्निरुपितः। तद्यथा –**

## ब्रह्म –

यथा सर्वत्र व्यापकत्वाद् ईश्वरः ब्रह्मेति संज्ञां भजते तथैव आसंसारे व्याप्यत्वाद् अग्नेरपि ब्रह्मनाम् यते हि गतिमानयं संसारः, अथ च अग्निः गतिशीलताया आधारत्वेन तिष्ठति। अत एव प्रतिपादितम् दृ अग्निरेव ब्रह्म।[14] अयं वा अग्निर्ब्रह्म च।[15]

## त्रिवृत –

अयं हि अग्निदेवः त्रिषु लोकेषु रूपत्रये विराजति। द्युलोके सूर्यः, अन्तरिक्षे वायुः विद्युद्वा, भूलोके अग्नि। त्रिवृदित्यस्यायमेव प्रमाणं प्राप्यते शतपथब्राह्मणे। यथा –

---

[6] तत्रैव 13.49।
[7] ऋग्वेदः 2.1.22–7।
[8] तत्रैव 2.1.11।
[9] तत्रैव 2.1.19।
[10] ऐतरेयब्राह्मणम् 1.1।
[11] शतपथब्राह्मणम् 6.1.2.28।
[12] तत्रैव 14.3.2.5।
[13] ऐतरेयब्राह्मणम् 1.5।
[14] शतपथब्राह्मणम् 10.4.1.5।
[15] तत्रैव 6.6.3.15।

त्रिवृत अग्नि।[16] स एताः तिस्त्रः तनूरेषु लोकेषु विन्यधत्त्।[17]

**रुद्रः –**

यो हि रुद्रः सैवाग्निः यथा रुद्रस्य शिवः रुद्रेति रुपद्वयं तथैवाग्नेरपि शान्त अशान्तश्चेति प्रकारद्वयमस्ति। तत्र शान्तरूपोऽग्निः आत्मिकी ऊर्जा, सात्त्विकं बलं, सत्सङ्कल्पं च ददाति, वैश्वानररूपेण भोजनं पचति, जठारग्नि –रूपेण उदरे तिष्ठति। मानवानां कल्याणं करोति। अथ च अशान्तेऽग्निः समुद्रे ज्वालामुखीरूपेण विराजति, दावानलः, भूकम्पश्चाप्यग्ने अशान्तो विनाशकारोरूपश्च। अग्नेः शान्तरूपस्य नाम ऊर्जा, बलं, अग्निरिति, अशान्तरूपस्य नाम रुद्रः शर्व अशनिः उग्रेति। तद्वदेव रुद्रस्यापि शान्तरूपः शिवेति नाम्ना प्रशस्तः, एवञ्च अशान्तः रुद्रः शर्व असनीत्यदिसंज्ञां भजते। अत्रेदं वक्तुं शक्यते यदग्निरुद्रौ च एकस्यैव तत्त्वस्य पृथक्–पृथक रूपौ स्तः। यथोक्तम् दृ यो वै रुद्रः सोऽग्निः।[18]

**तानि तस्य अशान्तानि एवेतराणि नामानि अग्निरित्येव शान्ततमम्।[19]**
**रुद्रस्य अष्टौ रूपाण्यपि अग्नेः रूपाणि भवन्ति। प्रोक्तञ्च तानि–एतानि–अष्टौ (रुद्रः, शर्वः,पशुपतिः,उग्रः, अशनिः, भवः, महानदेवः, ईशानः) अग्निरूपाणि।[20]**

अग्निः पृथ्वीस्थानीयो देवः। मन–प्राण–वाक्तत्त्वेष्वपि अग्नि देवत्वेन संराजते। उक्तञ्च–

**अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।[21]**
**अग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यः।[22]**
**प्राणो वा अग्निः।[23] वागेवाग्निः।[24]**

प्रसिद्धानि यानि षट् शास्त्राणि तेष्वपि अग्निमधिकृत्य चर्चा विद्यन्ते। सर्वप्रथममुच्यते धर्मशास्त्रं, तस्य दर्शनेषु मीमांसादर्शनमिति व्यवहारो भवति। मीमांसादर्शने श्रौतयज्ञानामेव व्यवहारः प्राधानत्वेन वर्णितं प्राप्यते। नाना प्रकाराणि यानि साधनानि तेषु शान्तिप्रदायकं

---

[16] तत्रैव 6.3.1.25।
[17] तत्रैव 2.2.1.14।
[18] तत्रैव 5.2.4.13।
[19] तत्रैव 1.7.3.8।
[20] तत्रैव 6.1.3.18।
[21] ऐतरेयब्राह्मणम् 1.1।
[22] शतपथब्राह्मणम् 3.1.3.1।
[23] तत्रैव 9.5.1.68।
[24] तत्रैव 3.2.2.13।

श्रेष्ठपदं च साधनं यज्ञैव, तत्र विकासार्थं, विनाशार्थं, संहारार्थं, स्थापनार्थं, च अग्निदैवस्यैव प्रयोगः सर्वेषु यागेषु दृश्यते। असुरा अपि स्वकार्यं साधयितुं यज्ञं कुर्वन्ति स्म। ऋषय अपि लोककल्याणार्थं यज्ञं सम्पदयन्ति स्म। ते यज्ञाः यथा – अग्निहोत्रहवनम्, पौर्णमासम्, चातुर्मास्ययागः, अग्निष्टोमयागः, उक्थ्यः, अतिरात्रः, आप्तोर्यामः, सर्वपृष्ठाप्तोर्यामः, सवर्णसत्रः, पिण्डपितृयागः, अग्निचयनम्, सुपर्णचिति दर्शयागः, निरूढपशुबन्धः, कौकिलसौत्रामणिः, अग्निष्टोमः, षोडशी, वाजपेयः, मित्रविन्दः, साग्निचित्त, नक्षत्रसम्, विश्वजिदतिरात्रम्, श्येनचितिः, दाक्षायणः महाव्रतम्, चतुरात्रम्, गर्गत्रिरात्रम्, पंचरात्रम्, सप्तरात्रम्, नवरात्रम्, एकादशरात्रम्, चतुर्दशरात्रम्, चतुर्विंशरात्रम्, संवत्सररात्रम्, अश्वमेध, ब्राह्मणसवः, सर्वतोमुखम्, सूर्यष्टुत, पौण्डरीकः, द्वादशाह, त्रिरात्रम्, व्युष्टिद्विरात्रम्, जामदग्नयः, षडरात्रम्, अष्टरात्रम्, दशरात्रम्, त्रयोदशरात्रम्, पंचदशरात्रम्, त्रिंशरात्रम्, त्रयस्त्रिंशरात्रम्, एकोनपञ्चाशद्रात्रम्, गवामयनसत्रम्, राजसूययागः, गोसवः, पञ्चदशशारदीयमित्यादीनि यानि यज्ञ कर्माणि विद्यन्ते तानि सर्वाण्यपि अग्निसिद्धानि एव। एतेषु सर्वेषु यागेषु प्राधानदेवत्त्वेन अग्निः संराजते। अग्निं विना एतेषां सिद्धिः कदापि न भवितुं शक्नोति। यतो हि अग्निरेव हविर्गृहीत्वा अन्येभ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यः समर्पयति, अत एव सर्वेषु यागेषु सर्वप्रथम अग्नेरेवावाहनं कुर्वन्ति याजकाः। त्रिषु लोकेष्वेवमेव अग्नेः आधिदैविकस्वरूपस्य दर्शनं भवति।

## सन्दर्भग्रन्थ सूची :–


1. शुक्लयजुर्वेद ।
2. अथर्ववेद।
3. ऐतरेयब्राह्मण।
4. शतपथब्राह्मण।
5. ऋग्वेद।



शोधच्छात्रः<br>
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय<br>
वेद–व्यास परिसर बलाहर हि.प्र.

# मातृकाणां परिचयात्मकपृष्ठभूमिः

– अंशुगुप्ता

**मातृका** – मातृवत् मार्गदर्शनं कुर्वन्तीत्यतः प्राचीनहस्तलेखानां कृते मातृकाः इति व्यवहारः। पञ्चसप्ततिवर्षात् पूर्व लिखिताः ये ग्रन्थाः ये च हस्तेन लिखिताः ताः मातृकाः भवन्ति। काष्ठपट्टिका पेपीरसः इत्यादयः पाण्डुवर्णे सन्तीत्यतः पाण्डुलिपिः इत्यपि व्यवहारः मातृकायाः वर्तते। मातृकाणां वैविध्यम्– मातृकाः द्विविधाः।

1. **कोमलमातृकाः –**

   ताडपत्रं, भुर्जपत्रं, साँचीपत्रं, पटीयपत्रं, चर्मपत्रं, कर्गजपत्रञ्चेति।

2. **कठोरमातृकाः –**

   पाषाणलेखः (शिलालेखः, गुहालेखः, स्तम्भलेखः ( शिलास्तम्भः, ध्वजस्तम्भः, जयस्तम्भः, कीर्तिस्तम्भः, वीरस्तम्भः, सतीस्तम्भः, छायास्तम्भः, यूपस्तम्भः, स्मृतिस्तम्भः) चट्टानलेखः, मूर्तियलेखः, अन्यलेखः) मृत्तिकालेखः, धातुपत्रलेखः, काष्ठीयलेखः इति।

**प्रकारान्तरेण मातृकाणां विभागः –**

| | | |
|---|---|---|
| 1. रूग्णमातृकाः | 2. स्वस्थमातृकाः | 3. विषयवस्तुमातृकाः |
| 4. आङ्गिकमातृकाः | 5. भग्नमातृकाः | 6. सचित्रमातृकाः |
| 7. अचित्रमातृकाः | 8. सम्पूर्णमातृकाः | 9. असम्पूर्णमातृकाः |

**आकारस्याधारेण भेदाः –**

1. घण्डी 2. कच्छपि 3. वृत्ताकारः 4. सम्पुटकम् 5. मुष्टि 6. सम्पुटं 7. छेदपाठी 8. मत्स्य 9. चूरी 10. रुद्राक्षी – गीतगोविन्दम् इत्यपि प्रकारान्तरेण वक्तुं शक्यते।

**विविधमातृकाणां स्वरूपम्**

## तालपत्रम्

प्राचीनभारते तालपत्रे लेखनमाधिक्येन क्रियते स्म। लक्षणम्– तालवृक्षः कश्चन भवति नारिकेलवृक्षसदृशः। तादृशवृक्षस्याङ्गविशेषेण अस्य तालपत्रस्य निर्माणं भवति। दक्षिणभारते आधिक्येन एषः वृक्षः दरीदृश्यते।

## द्विविधं तालपत्रम्

1. श्रीतालपत्रम्  2. खरतालपत्रम्

**1. श्रीतालपत्रम्** – दक्षिणभारतस्य तटीयप्रदेशे श्रीतालवृक्षाः दृश्यन्ते आधिक्येन। पश्चिमसमुद्रतटीयक्षेत्रे, मालाबारतटे, बंगाल, श्रीलंका, म्यामार ( बर्मा ) इत्यादिप्रदेशे विशेषरूपेण श्रीतालः लभ्यते। ग्रन्थलेखनार्थं श्रीतालस्य पत्रमेव उपयुज्यते।

**2. खरतालपत्रम्** – एषः वृक्षः शुष्कप्रदेशे यथा गुजरातः, सिन्धः, पञ्जाबः, राजस्थानादिषु लभ्यते। अस्य वृक्षस्य पत्राणि लेखनयोग्याः न भवन्ति यतः अस्य पत्राणि स्थूलानि भवन्ति।

## तालपत्रस्य लेखनोपयोगित्वम् –

यानि तालपत्राणि लेखनयोग्यानि भवन्ति तानि आदौ आतपे शुष्कार्थं स्थाप्यन्ते। तदनन्तरं किञ्चित्कालं यावत् जले निमज्जनं कृत्वा स्थाप्यते। तदनु पाषाणेन तस्य स्थौल्यं निवार्य लेखनाय उपयुज्यते। मशीद्वारा अस्मिन् पत्रे लिख्यते। अस्मिन् पत्रे यदि लिख्यते तर्हि बहुकालं यावत् एतत् पत्रं नष्टं न भवति। संरक्षितञ्च भवति।

## तालपत्रस्य प्राचीनता –

तालपत्रस्योपयोगः बहुप्राचीनकालात् भारते दरीदृश्यते। यतः जातककथादिषु पण्ण (पत्रम् ) इति शब्दः तालपत्रस्य कृते एव उपयुक्तमस्ति। चीनीयात्री युवानचंग तस्य शिष्यै स्वीयग्रन्थे उल्लिखितमस्ति यत् बौद्धानां त्रिपिटिकमिति धर्मग्रन्थः तालपत्रे एव लिखितमिति।

## तालपत्रे लिखिताः अत्यन्तप्राचीनग्रन्थाः –

जातककथादिषु पण्ण ( पत्रम् ) इति शब्दः तालपत्रस्य कृते एव उपयुक्तमस्ति। चीनीयात्री युवानचंग तस्य शिष्यै स्वीयग्रन्थे उल्लिखितमस्ति यत् बौद्धानां त्रिपिटिकमिति धर्मग्रन्थः तालपत्रे एव लिखितमिति। प्रसिद्धमातृकाग्रन्थालयेषु विद्यमानाः विशिष्टतालपत्रमातृकाः–प्रसिद्धसंस्कृतकाव्येषुतालपत्रस्योल्लेखः–

- डॉ० सत्येन्द्रवर्याणाम् अनुसारं पाशुपतमतस्य आचार्यरामेश्वरध्वजकृत 'कुसुमाञ्जालिटीका' 'प्रबोधसिद्धी' प्राचीनतम् ताड़पत्रलेखः भवति। प्रथमद्वितीयशताब्दः अस्य ग्रन्थस्य भवति।
- डॉ० शिवगणेशमूर्तिवर्याणाम् अनुसारं मुडविडरी (Mudbidri ) जैनभण्डारे संरक्षित धवलं (Dhavala) प्राचीनतमतालपत्रलेखः अस्ति। नवमीशताब्दी अस्य ग्रन्थस्य वर्तते। जैसलमेर– ग्रन्थभण्डारे उपलब्धा श्कुवलयमालाश ( 1139 ई . में लिपिकृत ) 'तिलकमञ्जरी' ( 1130 ई . ) च अस्य ग्रन्थस्य प्राचीनतमताड़पत्रीयलेखः भवति। तपागच्छभण्डारे संरक्षितं 'पञ्चमीकहा' (1053A.D. ) अस्यसंग्रहस्य प्राचीनतमा प्रतिः भवति।
- जापाने विद्यमान होरियूजिमठे बौद्धधर्मेणसम्बद्ध 6 वीं शताब्दी मध्ये ताड़पत्रे लिखितः ग्रन्थः 'प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्रश्उष्णीशविजयधारिणी' मठे संरक्षितमस्ति।
- भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना मध्ये 178 ताड़पत्रे
- लिखितं जैनग्रंथः 'उपमिति भवप्रपञ्च कथा ( 905–6 ई . ) उपलब्धमस्ति।
- एतत् अतिरिच्यान्यमहत्वपूर्णताड़पत्रेषु विद्यमानलेखानि– 'परमेश्वरतन्त्र' ( कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय संग्रह 858 A-D ), 'स्कन्दपुराण' ( 7 वीं शदी ) 'लंकावतार' ( 906–7 ई) (दरबार लाइब्रेरी काठमाण्डू ) 'तुरफान हस्तलेखों' तः प्राप्त डॉ . लूडर्स इत्यनेन सम्पादित 'सारिपुत्रप्रकरण' आदि।

## भूर्जपत्रम् –

भूर्जपत्रस्य वनस्पति अथवा वैज्ञानिक नाम भवति (Botanical Name) – Baetula Utiles अथवा Baetula bhoj & patra इति। हिमालयक्षेत्रे कश्मीरतः सिक्किं पर्यन्तं

3,000 मीर्ट उपरि एषवृक्षः दृश्यते। अद्यत्वे भूर्जवृक्षाः नाशंप्राप्यमानाः सन्ति। आधुनिककाले उपयुज्यमानकर्गजानि शीघ्रं नष्टानि भवन्ति। भूर्जपत्रादिकं तु अधिकं कालं यावत् नाशं न प्राप्नोति। गिरनारः, प्रयागः इत्यादिषु अभिलेखानि लभ्यन्ते। राजस्थान– गुजरात इत्यादिस्थले बहवः हस्तलेखाः प्राप्त्यन्ते।

**विशिष्टभूर्जमातृकाः –**

1. भूर्जपत्रे लिखितः प्राचीनतमः लेखः खोतानमध्ये प्राप्त 'प्राकृत धम्मपद' इति। एवमेव 'खरोष्ठी– धम्मपद' इत्यपि अस्ति। अस्य समयः द्वितीयः अथवा तृतीयः शताब्दी ई . आसीत्।

2. डॉ० ओझा वर्येण खोतान मध्ये प्राप्तबौद्धग्रन्थः 'संयुक्तागमः' एषः प्राचीनतमः भूर्जपत्रलेखः। अस्य समयः चतुर्थशताब्दी इति चिन्तयन्ति। एतदतिरिच्य बोवर पाण्डुलिपिषु ( Bower Manuscripts ) तथा बक्शाली – पाण्डुलिपिषु ( Bakshali Manuscripts ) भुर्जपत्राणि एव दृश्यन्ते।

**प्रसिद्धसंस्कृतकाव्येषु भूर्जपत्रस्योल्लेखः –**

1 ) कालीदासस्य साहित्ये भूर्जपत्रस्य उल्लेखः दृश्यते।

**न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा ।**
**व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रियोपयोगम् ।**

**( कुमारसम्भव 1.7 )**

2 ) अल्बरूनी ( 1030 A.D. ) ग्रीक लेखक कर्टियस ( Curtius ) इत्यादयः भारते लेखनाधाररूपेण भूर्जपत्रस्योपयोगः भवति स्म इति स्वीयग्रन्थे प्रकटितवन्तः।

**कागजपत्राणि , कागजपत्रस्य प्राचीनत्वम् –**

**कर्गजपत्राणि कोमललिप्यासने अन्तर्भवन्ति।**

कागजीयनिआर्कसः सिकन्दरस्य सेनापतिः आसीत्। तस्यानुसारं पञ्जाबजनाः कार्पसं कर्तयित्वा कर्गजनिर्माणकलां जानन्ति स्म। भारते प्राचीनकालादेव

कर्गजनिर्माणं भवति स्म। परवर्ती काले कश्मीरः, दिल्ली, पटना, कानपुरः, खंभातः, कागजपुरा, ( दौलताबाद ), घोसुण्डा सांगनेर इत्यादिषु कर्गजनिर्माणस्य बृहत् केन्द्रमासीत्।

मध्येशिया मध्ये यारकंदस्य समीपे 'कुरिअर' नामक स्थाने वेबरक्षेत्रे गडे कर्गजे लिखितः चत्वारः ग्रन्थः लब्धः। अस्याः भाषा संस्कृते वर्तते। लिपिः गुप्त लिपिः। डॉ . हार्नली अनुसारम् अस्य ग्रन्थस्य कालः पञ्चमशताब्दी वर्तते।

राजस्थान– प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानं, जोधपुरस्य संग्रहे आनन्दवर्धनेन कृत ध्वन्यालोकस्योपरि अभिनवगुप्तविरचितध्वन्यालोकलोचनटीकायाः प्राचीनतमा प्रतिः प्राप्ता वर्तते। ( संवत् 1204) (1146 ई .)

भारते प्राप्तकरगजे लिखितप्रतिषु वाराणस्यां संस्कृतविश्वविद्यालये सरस्वतीभवनपुस्तकालये विद्यमानः भागवतपुराणस्य एका मिश्रिता प्रतेः उल्लेखः लभ्यते। अस्य मूलपुष्पिकायाः संवत् 1181 ( 1134 ई . ) इति श्रूयते।

**धातुपत्राणि –**

ताम्रपत्रलेखः (ताम्रपट्टिका, पत्रफलकः, ताम्रासनः, शासनपत्रः ,) सर्वप्रथमतया सर्वाधिकलेखाः भारते अस्मिन्नेव धातौ लिखतमस्ति। अस्य उपरि प्रायः राजाज्ञाः, दानस्योल्लेखः, प्रशस्तिः, यंत्रतन्त्रादिसम्बद्धलेखोपलल्यन्ते। आन्ध्रकविताल्लापाक्कम् अन्नामाचार्यस्य (1400–1503c.) भगवानवेंकटेश्वरस्य प्रशिस्तमध्ये रचितः ग्रन्थः 1922 मध्येतरुपितमिन्दरेसंकीर्तन–भण्डारेप्राप्तम्।

**प्राचीनतम् उपलब्ताम्रपत्रलेखेषु गोरखपुर।**
**गौराग्रामात् प्राप्तमिस्त। एतत्चन्द्रगुप्तमौर्यस्य।।**

**(320 B.C.) कालसम्बद्धमिस्त।**

- **स्वर्णपत्रलेखः** – स्वर्णपत्रस्याधिक्य मौल्यकारणात् शासकजनाः एव अस्मिन्पत्रे लेखयिन्त स्म। आधिक्येन जैनग्रन्थेषु अस्य पत्रस्योपयोगः दृश्यते।

प्रसिद्धविद्वान्जनरलकनघमद्वाराखरोष्ठिलिप्यां लिखतं स्वर्णपत्रं तक्षशिलायाः समीपे गंगूस्तूपे (GanguStupa) प्राप्तमिस्त।

- **रजतपत्रलेखः** – अस्य प्रयोगोपि न्यूनतया एव दृश्यते। भट्टिप्रोलू एवं तक्षशिलास्तूपे रजतपत्रं प्राप्तमिस्त। अस्य प्रयोगः अपि प्रायः यंत्र–मंत्रादि लेखने भवित स्म। जैनिनां पवित्रमंत्राः रजतपत्रेषु लिखताः सन्ति।

- **अन्यधातुलेखः** – स्वर्ण–रजतादीन् अतिरक्तपीतल–काँसा–लोहादि धातुषु लेखः लिख्यते स्म्। अफगानिस्तानेवारदेक (Vardek) स्तूपः 6वींशताबछी पूर्वमेव पीतलनिर्मितसामीसत्। अस्मिन् पत्रे भगवानबुद्धस्यावशेषः वर्तते। पेशवरेकाँसेनिर्मित मानवशीर्षंप्राप्यते, तस्मिन्लेखः उत्कीर्णं वर्तते।

- **लोहस्तम्भलेखस्यउदाहरणं** – महरौलीप्रसिद्धस्तम्भः, धारस्तम्भलेखः, अचलेश्वरमिन्दरस्य (माउन्टआबू, राजन) लोहस्तम्भः।

**लोहपत्राणि –**

- ताम्रपत्र लेखः ( ताम्र पट्टिका, पत्रफलक, ताम्रासन, शासनपत्र, ) सर्वप्रथमतया सर्वाधिकलेखनानि भारते अस्मिन्नेव धातौ लिखितमस्ति। अस्य उपरि प्रायः राजाज्ञाः, दानस्य उल्लेखः, प्रशस्तिः, यन्त्र – तन्त्रादिसम्बद्धलेखानि लभ्यन्ते। आन्ध्रकवि ताल्लापाकम् अन्नामाचार्य (1400–1503c. ) स्य भगवानवेङ्कटेश्वरस्य प्रशस्ति मध्ये रचितः ग्रन्थः 1922 मध्ये तिरुपतिमन्दिरे संकीर्तन – भण्डारे प्राप्तम्।

- प्राचीनतम् उपलब्धताम्रपत्रलेखेषु गोरखपुरस्य सहगौरा ग्रामात् प्राप्तमस्ति। एतत् चन्द्रगुप्त मौर्य (320 B.C. ) स्य कालसम्बद्धमस्ति।

- स्वर्णपत्र लेख दृस्वर्णपत्रस्याधिक्य मौल्यकारणात् शासकजनाः एव अस्मिन् पत्रे लेखयन्ति स्म। आधिक्येन जैनग्रन्थेषु अस्य पत्रस्योपयोगः दृश्यते। प्रसिद्धविद्वान् जनरलकनिंघम द्वारा खरोष्ठी लिप्यां लिखितं स्वर्णपत्रं तक्षशिलायाः समीपे गंगू स्तूपे (Gangu Stupa ) प्राप्तमस्ति।

- रजतपत्र लेख –अस्य प्रयोगोपि न्यूनतया एव दृश्यते। भट्टिप्रोलू एवं तक्षशिलास्तूपे रजतपत्रं प्राप्तमस्ति। अस्य प्रयोगः अपि प्रायः यंत्र – मंत्रादि लेखने भवति स्म। जैनिनां पवित्र मंत्राः रजतपत्रेषु लिखिताः सन्ति।

- अन्यधातुषु लेखः दृस्वर्ण रजतादीन् अतिरिक्त पीतल दृकाँसा–लोहादिषु धातुषु लेखः लिख्यते स्म। अफगानिस्ताने वारदेक ( Vardek ) स्तूपः 6 वीं शताब्दी ई . पूर्वमेव पीतलनिर्मितमासीत्। अस्मिन् पत्रे भगवानबुद्धस्यावशेषः वर्तते पेशावरे काँसे निर्मित मानवशीर्ष प्राप्यते। तस्मिन् लेखः उत्कीर्णं वर्तते।
- लौहस्तम्भलेखस्य उदाहरणं– महरौलीप्रसिद्धस्तम्भः, धारस्तम्भलेखः, अचलेश्वर मन्दिरस्य (माउन्ट आबू राजस्थान ) लौहस्तम्भः।

**काष्ठफलकम् –**

काष्ठलेखः भारते बौद्धकालात् काष्ठेलेखनप्रमाणं लभ्यते। बौद्धजातकं विनयपिटकादि ग्रन्थेन अस्य सूचना लभ्यते। काष्ठपट्टिकायाः कृते 'फलकम्' इत्यपि उच्यते। अस्य प्रयोगः अस्थायी लेखने, वर्णमालायाः ज्ञाने, कच्चारूपनिर्माणार्थम् उपयुज्यते।

**शिलाफलकम् –**

**लिप्यासनं द्विविधम्**

1. कठोरलिप्यासनं 2. कोमललिप्यासनमिति ।

**कठोरलिप्यासनं पुनः चतुर्विधम् –**

1. पाषाणलेखः 2. मृत्तिकालेखः 3. धातुपत्रलेखः 4. काष्ठीयलेखः इति।

**पाषाणलेखः चतुर्विधः –**

1. **शिलालेखः** – अशोकेन लेखनार्थं शिलायाः उपयोगः बहुकृतः। यतः शिलायाम् उत्कीर्णेन चिरकालं यावत् सः लेखः तिष्ठति। अशोकस्य 164 शिलालेखुः उपलभ्यन्ते। 154 मौलिकशिलालेखानि अशोकस्य वर्तते। धर्मप्रचारार्थम् शिलाफलकम् अशोकः उपयुज्यते स्म। इन्डोनेशिया मध्ये काष्ठस्योपरि शिलालेखः दृश्यते।

2. **स्तम्भलेखः –**

   स्तम्भलेखानि इमानि सन्ति।

1. अशोकस्य गिरिनारलेखः 2. खारवेलस्य हाथीगुम्फालेखः
3. यशोधर्मनस्य मन्दसोरप्रशस्ति 4. समुद्रगुप्तस्य प्रयागप्रशस्ति (400A.D.)

**3. गुहालेखः –**

**4. चट्टानलेखश्चेति।**

**विशिष्टाः हस्तप्रतिकृतयः तासां परिचयश्च –**

1. **बख्शाली मातृकाः** – भारतदेशस्य उत्तर – पश्चिमसीमान्तप्रदेशे मर्दान इति प्रसिद्धस्थानमस्ति। तत्रैव समीपे भरवशाली इति प्राचीननगरमस्ति। तत्र 1881 इ . मध्ये खननवेलायां कृषिकेण एषा मातृका प्राप्ता। सा च पाण्डुलिपिः प्राचीनभारतस्य ज्योतिषीयगणितस्य महत्त्वपूर्णः ग्रन्थः। अस्य ग्रन्थस्याधारः भोजपत्रमस्ति। पुरालिपिविज्ञानिनां मतानुसारम् एषः ग्रन्थः अतीवप्राचीनः। कृषिकेण थानदारं प्रति एतां पाण्डुलिपि दत्तवान् ततः कम ततः आरिकियोलोजि सर्वे ओफ इन्डिया। ततः हार्नल कलकत्तां प्राप्तम्। अधुना बोल्डाइन लाईब्ररी मध्ये अस्ति। शारदालिपिः, संस्कृतभाषाः, 70 पत्राणि , 7*4 आकारः, 10 शतब्दौ निर्माणं (हार्नल मते।) अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशनं आरिकियोलोजि सर्वे ओफ इन्डियातः 1927 मध्ये जातम्।

2. **बाँवर हस्तलिखितग्रन्थः** – बशर्ते बाँवेर इत्याख्यः भूगर्भियनगरे भोजपत्रे लिखित प्राचीनं हस्तलिखितग्रन्थस्य गुच्छमेकम् अवाप्नोत्। 56 पृष्ठानि अस्यां पाण्डुलिप्याम् आसीत्। अधिकः भागः उभयपक्षे लिखितमासीत्। लेखनं शुक्लमश्याम् अनेकजनैः लिखितमासीत्। केचनपृष्ठाः स्पष्टतया दृश्यन्ते स्म। अवशिष्टाः विरूपं प्राप्तवन्तः आसन्। 1890 ई मध्ये मध्य एशिया कुचा समीपे कुमतुरा नामकस्थाने एकस्मिन् प्राचीनबौद्धस्तूपावशेषे भोजपत्रे लिखिता एका पाण्डुलिपिः प्राप्ता। कर्नलः एतां पठितुं बंगाल एशियाटिक सोसायटी कलकत्तां प्रति प्रेषितवान्। अस्याः रिपोर्ट अप्रैल 1890 मध्ये सोसायटी पत्रिकायां प्रकाशितं जातम्। तदधुना आक्सफोर्ड बोल्डायन लाईब्ररी मध्ये वर्तते। एव बाँवेर पाण्डुलिपिः। पूर्ण, सम्यक् गुप्तकालीनब्राह्मीलिप्यां, सप्तग्रन्थानां सा समूहः, आयुर्वेदप्राचीनतमस्वरूपं प्रकटयति, सर्वसाधारणवस्तुमाध्यमेन लशुनं नवनीतादिना चिकित्सा कथं कर्तुं शक्यते इति विवरणं वर्तते।

प्राकृतमिश्रितसंस्कृतभाषा गद्यपद्य उभयविधा शैलीः, अग्निवेशः, भेदः , हारीतः, जातुकर्णः, क्षारपाणिः चरकः , सुश्रुतादीनां नामोल्लेखनम् अस्मिन् वर्तते। अस्य सम्पादकः हार्नल।

3. **गिलगित पाण्डुलिपयः**– बौद्धसंस्कृतेः मुख्यं केन्द्रगिलगिट सम्प्रति पाक – अधिकृतकाश्मीरे मुजफ्फराबादजनपदे वर्तते। तत्र अत्यन्तप्राचीनबौद्धस्तूपे सा पाण्डुलिपिः प्राप्ता। अजान् यः चरणं कारयति तेन प्राप्ता इयं। अधुना सा काश्मिरस्य हस्तलिखितग्रन्थसङ्ग्रहालये वर्तते। नष्टप्रायः, अपूर्णः लेखनशैली अद्भुताः, पाली तथा संस्कृतभाषाः, भट्टाचार्यविद्यवारिधिशिवनाथशर्मणः सहयोगेन डा . एन् . ए . दत्तः अस्याः सम्पादनम् अकार्षीत्। भारते प्राप्तासु पाण्डुलिपिषु प्राचीनतमा एषा। एकः पाठः समाप्य अपरपाठारम्भवेलायां स्थलं न त्यक्तम्। अतः अस्याः तुलना तिब्बती काष्ठोत्कीर्णनेन सह शक्यते। अस्य हस्तलिखितस्य ग्रन्थाधारेण प्रथमः ग्रन्थः गिलगित मैन्युस्क्रिप्टस् काश्मीरशासनार्थ भट्टाचार्य– विद्यवारिधिशिवनाथशर्मणः सहयोगेन डा . एन् . ए दत्तः अस्याः सम्पादनम् अकार्षीत्।

4. **गॉडफ्रे हस्तलिखितग्रन्थः** – कार्गिल समीपे लेह – कारगिल इत्यत्र व्यापारिकमार्गः नष्टः आसीत्। कैप्टन् गाडफ्रे पठान व्यापारिणां कृते एतं मार्गात् गन्तुं साहाय्यं अकार्षीत्। अतः ते वणिजः कृतज्ञताप्रकटनार्थं हस्तलिखितग्रन्थान् उपहाररूपेण अदुः। अस्य हस्तलिपिग्रन्थस्य कृते गाइफ्रे हस्तलिखितग्रन्थः इत्युच्यते। अस्मिन् ग्रन्थस्य 71 रचनानि सन्ति। अस्य एकस्यांशस्य उद्धृतं हार्नल सन् 1897 मध्ये अकरोत्।

5. **होरियूजी हस्तलिखितग्रन्थः** – यामाटो मध्ये होरियूजी संघाराम मध्ये प्रज्ञापारमिताह्रदयसूत्रं तथा संशियो धारिणी इति नामक ताडपत्रद्वयं प्राप्तम्। ऐनक्डोटा ऑक्सन् अस्य सम्पादनम् अकरोत् 1609 मध्ये जापान् प्रति नीतवन्तः। बौधिधर्मस्य काश्यपेन लिखितमिति श्रूयते। 11.5 दीर्घ 2 इन्च अगल अस्ति। 16.5 पंक्तिः वर्तते प्रत्येकं पृष्ठे। अन्यस्मिन् ताडपत्रे सप्त पंक्तयः। गुप्तलिपिः सदृश ब्राह्मीलिपिः। 6 शताब्दी पूर्वतनम्।

6. **भोजपत्रे हस्तलिखितग्रन्थः** – महाभारतस्य एषः हस्तलिखितः ग्रन्थः शारदालिप्यां वर्तते। आदि एवं वनपर्वणः अंशः, सभापर्वः पूर्णतया वर्तते। बम्बई राज्ञः कृते बुलर एतं ग्रन्थं क्रीतवान्। 16–17 शताब्दी, 114 पत्राणि, महाकाव्यस्य लघुसंस्करणस्य प्रतिनिधिः।

7. **आदिपर्वन् का प्राचीनतम उपलब्धग्रन्थः**– एषः ताडपत्रे लिखितः हस्तलिखितः ग्रन्थः। नेपालस्य राजगुरुः हेमराज पण्डितजू प्राप्तवान्। 1800 वर्ष प्राचीनम् , हल्की मश्यां लिखितं, महाभारतस्य आदिपर्व मात्रमस्ति। सम्पूर्ण पत्रं न नष्टमस्ति एकोपि। 21, 2.7 इन्च आकारः, प्रत्येकं पृष्ठे 7 पंक्तिः, ताफल छः संख्या 40 सादृशी लिपिः।

8. **पैप्पलाद हस्तलिखितग्रन्थः** – अथर्ववेदस्य पैप्पलाद हस्तलिखितः ग्रन्थः जम्मू तथा काश्मीरस्य स्वर्गीयमहाराजा रणवीरसिंहस्य समीपे आसीत्। 1875 मध्ये लेफ्टिनेंट विलियम म्यूर कृते दत्तवान्। जर्मनी प्रं राथ कृते सः दत्तवान्। तस्य मरणानन्तरं एषः ग्रन्थः ट्यूबिनजेन यूनिवर्सिटी प्राप्तम्। भोजपत्रम्, 275 पत्राणि, उभयपक्षात् लिखितमस्ति। शारदालिपिः, 450 वर्ष प्राचीनतमं 25–20 आकारः, अमिटमशी, आद्रता प्रभाव न भवति अत्र।

**संदर्भ सूची :–**


1. पाण्डुलिपिविज्ञान– डॉ. सत्येन्द्र
2. भारतीयपुरालेख– डॉ. संदीप कुमार
3. भारतीयपुराविज्ञान– कृष्णादत्त वाजपेयी
4. शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिवज्ञान– प्रो० अभिराजराजेन्द्र मिश्र एवं डॉ० राजेशकुमारी मिश्रा।
5. www-namami-gov-in
6. www-bharatiyakritisampada-nic-in



शोधच्छात्रा
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
जयपुरपरिसरः, जयपुरम्

# संप्रेषण तकनीकी

– संदीप कुमार शर्मा

**संप्रेषण** – संप्रेषण शिक्षा की "रीढ़ की हड्डी" है । बिना संप्रेषण के शिक्षा और शिक्षण दोनों की कल्पना नहीं की जा सकती है । संप्रेषण शब्द अंग्रेजी के communication का हिंदी पर्याय है । इसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के 'कम्ययूनीस' से मानी जाती है, जिसका अर्थ है – 'सामान्य' । अतः संप्रेषण ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति परस्पर सामान्य बोध के माध्यम से आदान–प्रदान करने का प्रयास करता है ।

**संप्रेषण का अर्थ** – "परस्पर सूचनाओं तथा विचारों का आदान–प्रदान (विनिमय) करना है। संप्रेषण प्रक्रिया में व्यक्ति अपने ज्ञान, हाव–भाव, मुखमुद्रा एवं विचारों आदि का परस्पर आदान–प्रदान करते हैं और उन प्राप्त विचारों को सही अर्थों में समझने और प्रेषण में उपयोग करते हैं। संप्रेषण अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाने की और दूसरों की बातें सुनने की, सूचनाओं, संवेदनाओं एवं विचारों के विनिमय की एक प्रक्रिया है ।

1. **लीगन्स के अनुसार** – "संप्रेषण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा दो या दो से अधिक लोग विचारों, तथ्यों, भावनाओं तथा प्रभावों आदि का इस प्रकार विनिमय करते हैं, कि सभी लोग प्राप्त संदेशों को समझ पाते हैं । संप्रेषण में संदेश देने वाले तथा संदेश ग्रहण करने वाले के बीच संदेशों के माध्यम से समन्वय स्थापित किया जाता है ।

**संप्रेषण की विशेषताएं** –

1. संप्रेषण परस्पर समन्वय स्थापित करने की एक प्रक्रिया है ।
2. इसमें विचार–विमर्श तथा विचार–विनिमय पर विशेष ध्यान देते हैं ।
3. यह द्विवाही प्रक्रिया है, अर्थात् 2 पक्ष होते हैं – प. सन्देश प्रदाता, पप. सन्देश ग्रहणकर्ता
4. संप्रेषण एक उदेश्य युक्त प्रक्रिया होती है ।
5. उत्तम शिक्षण के लिए प्रभावी संप्रेषण प्रमुख तत्व है ।

6. संप्रेषण सदैव गत्यात्मक प्रक्रिया होती है ।

7. संप्रेषण में विचारों का मौखिक, लिखित व सांकेतिक रूप में आदान–प्रदान किया जाता है ।

8. संप्रेषण सामाजिक प्रक्रिया है, इससे मानवीय संबंध दृढ़ होते हैं ।

## संप्रेषण प्रक्रिया (Process of Communication)

**संप्रेषण प्रक्रिया का मॉडल –**

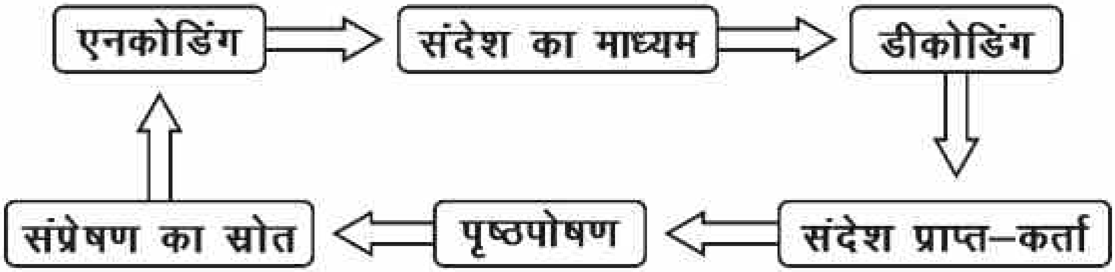


**एनकोडिंग –** वह प्रक्रिया जिसमें किसी विचार की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों या प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है ।

**डिकोडिंग –** वह प्रक्रिया जिसमें संदेश प्राप्तकर्त्ता संदेश स्रोत से प्राप्त संकेतों या प्रतीकों का कुटानुवाद करता है और संदेश ग्रहण करता है ।

**संप्रेषण के प्रकार** – शिक्षण में संप्रेषण के प्रकारों का वर्गीकरण –

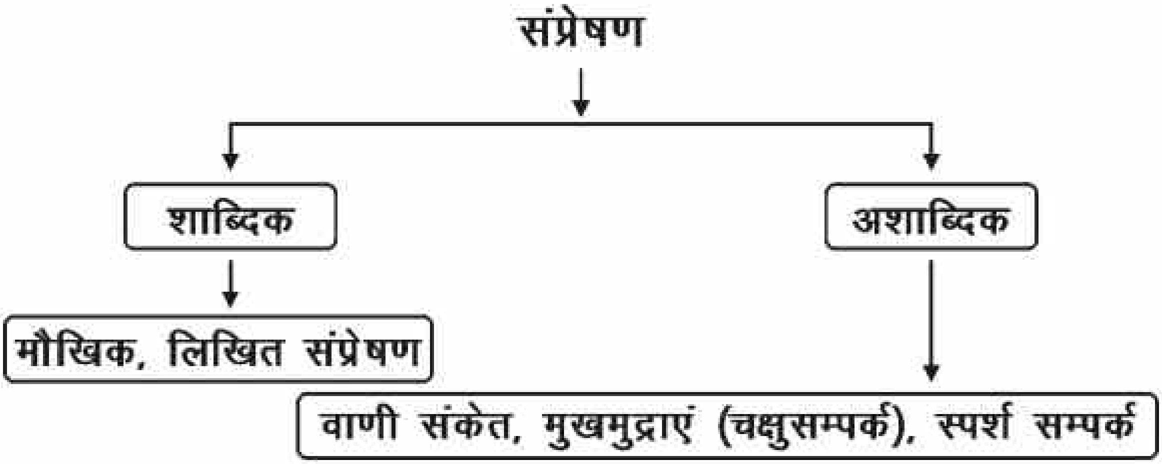

**(क) शाब्दिक संप्रेषण –**

इसमें हमेशा भाषा का प्रयोग होता है । यह संप्रेषण मौखिक शब्दों से और लिखित शब्दों या संकेतों से किया जाता है ।

(i) **मौखिक संप्रेषण** – इसमें मौखिक रूप से अभिव्यक्ति एवं सुनकर सूचनाओं या विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है । इस संप्रेषण में सम्प्रेषक और संप्रेषी दोनों आमने–सामने रहते हैं, जैसे – वार्ता, चर्चा, प्रश्नोत्तर, कहानी इत्यादि ।

(ii) **लिखित संप्रेषण** – इस संप्रेषण में लिपि का महत्त्व है, इसमें संप्रेषक एवं संप्रेषी का आमने–सामने होना जरूरी नहीं है । संदेश प्रदाता लिखित रूप में शब्दों या संकेतों से संदेशों का विनिमय करता है । इसमें भाषा सरल सुगम स्पष्ट होनी चाहिए ।

**(ख) अशाब्दिक संप्रेषण –**

इस प्रकार के संप्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है । इसमें –

(i) **वाणी संकेत संप्रेषण** – इसमें सम्प्रेषक व सम्प्रेषी आमने–सामने होते हैं तथा व्यक्तिगत रूप से वाणी के छोटे–छोटे रूप में सम्प्रेषण होता है । जैसे – हां हां, हूं हूं, YES-YES, सीटी बजाना, मुस्कुराना, ठहाके लगाना इत्यादि ।

(ii) **मुख मुद्राएं एवं चक्षु संपर्क** – यह भी व्यक्तिगत संप्रेषण होता है । इसमें eye contact (चक्षु सम्पर्क) एवं मुख मुद्राओं का प्रदर्शन प्रभावी होता है । कक्ष्या में एक शिक्षक चक्षु संपर्क से छात्र की मनरूस्थिति को जानने में सफल होते हैं। मुखमुद्राएं संवेगात्मक स्थिति को प्रदर्शित करती है । मुखमुद्राएं पर भय, क्रोध, प्रसन्नता आदि का संप्रेषण सरलता से होता हैं । विशिष्ट बालकों के लिए अत्यंत उपयोगी संप्रेषण है ।

(iii) **स्पर्श संप्रेषण** – इसमें स्पर्श को ही संप्रेषण का प्रमुख माध्यम बनाया जाता है । स्पर्श से ही व्यक्ति की भावनाओं का पता चल जाता है । जैसे – हाथ

मिलाना, दिखावा करना, माता के हाथ का एक स्पर्श शिशु को बहुत कुछ कह जाता है । दृष्टिहीन बालकों के लिए स्पर्श संपर्क संप्रेषण महत्वपूर्ण है । ब्रेल लिपि स्पर्श संप्रेषण का माध्यम होती है ।

**शिक्षण अधिगम में संप्रेषण –**

प्रभावशाली शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए प्रभावशाली संप्रेषण आवश्यक होता है। प्रभावशाली शिक्षण में शिक्षक एवं छात्र मिलजुलकर प्रभावशाली संप्रेषण के लिए प्रयास करते हैं । हरबर्ट महोदय के अनुसार "शिक्षण का कार्य विचारों तथ्यों व सूचनाओं को छात्रों तक पहुंचाना है" ।

शिक्षक जितना प्रभावशाली ढंग से इनका संप्रेषण करता है, उतना ही सफल शिक्षक कहा जाता है । संप्रेषण शिक्षक और छात्र दोनों बांधे रखने में उन्हें प्रभावित करने में अहम् भूमिका निभाता हैं । प्रभावी संप्रेषण के लिए विधियो, शिक्षण व्यूहरचनाओं, उपागमो इत्यादि संप्रेषण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है । जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का विकास होता है ।

शोधच्छात्र
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय, जयपुर

# उच्चशिक्षायाः विद्यार्थिषु भविष्यनिर्माणस्य कृते मानसिकासन्तुलनस्य निवारणे समाजस्य भूमिका

– डॉ. अलका शर्मा

**प्रस्तावना** – शिक्षायाः विकासः समाजस्य परिवर्तनेन सह विविधैः नवाचारैः प्रक्रियाभिश्च भवति। मनुजस्य प्रकृतिः शिक्षयैव निर्मिता भवति। शिक्षाप्रक्रिया मानवस्य शक्ति – बुद्धि – कार्यकुशलता – प्राकृतिकक्षमतानाञ्च सम्पूर्णविकासे सहायिका भवति। शिक्षयैव मानवस्य व्यक्तिगतसामाजिकजीवनयोरनुकुलितवातावरणस्य निर्माण भवर्ति शिक्षयैव मानवस्य प्रगतिः सम्भवः। शिक्षया तात्पर्यमस्ति – ज्ञान – शक्ति – अधिगम – मानव – समाजस्य च विकासकरणम्। शिक्षा अकादमिकविषयरूपे विद्यार्थीन् शिक्षयति प्रौढ़मानवाञ्च निर्देशयति। शिक्षया एव व्यक्तिगतसामाजिकजीवनयोः गुणवत्तायाः विकास भवति।

उच्चशिक्षा शिक्षा एकस्य श्रेष्ठमानवस्य निमाणं करोति। शिक्षयैव मानवः श्रेष्ठपदमाप्नोति। शिक्षपामुचिताचरण – तकनीकीदक्षता – शिक्षण – विद्यायाश्च प्राप्तिरित्यादयः समाविष्टाः सन्ति। उच्चशिक्षायां विश्वविद्यालयैः, व्यावसायिकाविश्वविद्यालयैः, कम्यूनिटीविद्यालयैः, लिबर्ट – आर्टमहाविद्यालयैः प्रौद्योगिकीसंस्थानैश्च शिक्षा प्रदीयते। प्रार्थमिकमाध्यमिक शिक्षयोः अपरां इयं शिक्षा शिक्षायाः तृतीयस्तरः विद्यते, यः प्रायशः एच्छिकं भवति। श्रेण्यामस्यां स्नातकशिक्षा – परास्नातकशिक्षा – व्यावसायिकीशिक्षा – प्रशिक्षणञ्चेत्यादयः आयान्ति। शिक्षाकोशलानां, व्यापाराणां, मानसिकनैतिकसौन्दर्यविषयकयोः उत्कर्षस्योपरि केन्द्रिता अस्ति।

**मानसिकासन्तुलनम्** – मानवः एवास्ति यः मानसिकासन्तुलनमुत्पन्नं करोति। तस्य च विक्षोभानामानुसारं देहस्य विभिन्नानामवयावानां सामान्य कार्यपद्धत्यामवरोधमुत्पन्नं करोति, व्याध्यश्चातिक्रमणं करोतीति। कस्यचिदप्युद्देश्यस्य प्राप्तये यदा वयं प्रयत्नं कृत्वा अपि सफलतां न आप्नुमः, तदैव मानसिकासन्तुलनस्यानुभवं कुर्मः। मानसि कासन्तुलनस्याधिक्ये

असन्तुलनस्य स्थितिः उत्पन्नं भवति। मानवस्य जीवने इदमसन्तुलनं सदैव हानिकारकमेव न भवति अपितु लक्ष्यप्राप्तये प्रेरितमपि करोति। मध्यमस्तरस्या सन्तुलनमुपलब्धीन् लबधमाने सहायको भवति। निर्णयक्षमयतायां हीनता, कस्यचिदपि परिस्थितेः नकारात्मकपक्षदर्शनं, कस्यापित घटनायाः विषये चिन्तनम, स्मरणशक्त्यां ध्यानकेन्द्रणे वा न्यूनता, सदैव चिन्तायां ग्रस्तश्चेत्यादयः मानसिकासन्तुलनस्य लक्षणानि सन्ति।

सामान्यतया यैः कारणैः असन्तुलनमुत्पतति चेत् तस्य कारणस्य निवारणेन सह अन्तुलनं समाप्तं भवितुमर्हति परन्तु यदि मानवः दीर्घकाले यावन्तम् असन्तुलने ग्रस्तः भवति तर्हि तस्य दुष्परिणामाः अपि भवन्ति। एते दुष्परिणामाः एव जीवनं जटिलं कुर्वन्ति। उच्चरक्तचापः, ह्रदयरोगः, मधुमेहः, मानसिकासन्तुलनमित्यादयः स्थितयः असन्तुलनस्य प्रभावाधिक्येन कारणेन उत्पतन्ति तथा चास्माकं जीवनस्य जटिलतान् वर्धयन्ति। अतः अस्माभिः असनतुलनस्य स्थितिं दूरीकरणस्य प्रयासं करणीयः, येनास्माकं जीवनं सुखमयं भवेत्।

**मानसिकासन्तुलनस्य निवारणे समाजस्य भूमिका** – मानसिकासन्तुलनस्य निवारणे विद्यार्थिषु भविष्यनिमार्णस्य कृते समाजस्य महती भूमिका भवति। मानवाः समाजे एव मानवीयक्रियाकलापाः, कुर्वन्ति। तेषु क्रियाकल्पेषु आचरण – सामाजिकसुरक्षा – निर्वहनमित्यादयः क्रियाः आयान्ति। समाजे वसित्वा एव मानवाः परस्परं स्नेहपूर्ण व्यवहारं कुर्वन्ति। समाजे एव बालकाः समाजस्ज्ञय नियमैः अवगताः भवन्ति तथा नियमानुसारं ध्ययपथे कार्य कुवन्ति। विद्यार्थीनामपि कर्तव्यमति यत् ते यथार्थवादिनो भूत्वा अवास्तविकस्य लक्ष्यस्य निर्धारणं न कुर्युः। परेषां सहयोगेनापि कार्यं कर्तुं शक्यन्ते। बालकेन समयस्य सदुपयोगः करणीयः। स्वकीयमित्रैः तथा परिवारेण सह समयं वितरेत्। अहंकारं त्यजेत्। पर्याप्तमात्रायां निद्रां गृह्णयेत्। नकारात्मकचिन्तनेन दूरी भ्वेत्। सदैव व्यायामः कर्तव्यः। परामर्शमपि गृह्णयेत्। समाजे वसित्वा एव बालकः एकः श्रेष्ठः नागरिकः भवितुमर्हति। अत एव उच्चते यत् बालकानां भविष्यनिमाणे मनिसिकासन्तुलनस्य निवारणे समाजस्य महती भूमिका भवति।

## सन्दर्भग्रन्था :


1. शर्मा, गणपतिराय, उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुरम्।

2. शर्मा, डॉ ब्रह्मदेव, शिक्षा समाज और व्यवस्था, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

3. सिनसिनवार डॉ. सुरेन्द्र सिंह, तंवर डॉ. कल्याण सिंह, विश्नोई सीमा, लिंग विद्यालय एवं समाज, ठाकुर पब्लिकेशन्स प्रा. लि. जयपुरम्।

4. पाण्डेय डॉ. के पी, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, आर लाल बुक डिपो मेरठ, उत्तरप्रदेशम्।



प्राचार्या
श्रीमती मोहरी देवी तापड़िया शिक्षा शास्त्री महाविद्यालय
जसवन्तगढ़, नागौरम्

# अग्निपुराणे प्रलयकालविमर्शः

– अमृतकुमारशर्मा

अस्मिन् अध्याये अग्निपुराणे समागतानां प्रलयकालिकतत्त्वानां विमर्शः क्रियते। अत्र अदौ जगतः सृष्टेः वर्णन क्रियते। अस्य जगतः सृष्टिः श्रीहरेः लीलामात्रम् अस्ति। विष्णुरेव स्वर्गादीनां रचयिता अस्ति। सृष्टिः प्रलयश्च तस्यैव स्वरूपमस्ति। सृष्टेः आदिकारणमपि विष्णुरेवास्ति। विष्णोरेव निर्गुणत्वमपि अस्ति सगुणत्वम् अपि च। सर्वादौ सत्सवरूपः अव्यक्तः ब्रह्म एवं आसीत्। तस्मिन् काले न तु आकाशस्य सत्ता आसीत् न च रात्रिदिवसयोः विभागः आसीत्। तदनन्तरं सृष्टिकाले भगवान् विष्णुः प्रकृति प्रविश्य तां विकृतां कृतवान्। ततः परं प्रकृतितः महत्तत्वस्य तस्माच्च अहंकारस्य प्रादुर्भावो जातः। अहंकारस्य त्रिविधत्वं प्रकल्पितम् वैकारिकः (सात्विक) तैजसः (राजस) भूतादिरूपः तामसश्च। तामसाहंकारात् शबदतन्मात्रायुक्तः आकाशः प्रादुर्भूतः। आकाशात् स्पर्शतन्मात्राव्यवहारवतः वायोः प्रादुर्भावः जातः। वायोः रूपतन्मात्रायुतस्य अग्नेः उत्पतिः जाता। अग्नितात्वात् रसतन्मात्रायुतायाः भूमेः प्रादुर्भवो जातः। इयं तामसाहंकारात् जायमाना सृष्टिः वर्तते। इन्द्रियाणि तैजसाहंकारात् प्रादुर्भूतानि। दशेन्द्रियाणि मनसः देवता च इयं वैकारिकाहंकारस्य सृष्टिरस्ति। ततः परं बहुविधायाः प्रजायाः उतपादनस्य संकल्पयुक्तः भगवान् स्वयम्भूः सर्वादौ जलस्य सृष्टिं कृतवान् एवश्च स्वस्य शक्तेः (वीर्यस्य) आधान कृतवान। जलं नारत्वेन ज्ञायते यतोहि तत् नरात् उत्पद्यते। नार (जलम्) एव भगवतः विष्णोः अयनं (निवासस्थानम्) आसीत् अतः भगवान् विष्णुः नारायणत्वेन अपि ज्ञायते। **तदुक्तम्** –

**रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा धरित्र्यभूत् ।**
**अहंकारात्तमासात्तु तैजसानीन्द्रियाणि च ।**
**वैकारिकदशदेवा मन एकादशेन्द्रियम् ।**
**ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।।**
**अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ।**

**आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै परसूनवः ।।**
**अयनं तस्य ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ।**[1]

अग्निपुराणस्य सप्तदशाध्याये जगतः सृष्टेः वर्णनप्रसंगे उक्त यत् भगवता विष्णुना यत् वीर्य संस्थापितं तत् जले स्वर्णमयस्य अण्डरूपे प्रकटितम्। तस्मिन् सुवर्णाण्डे भगवतः ब्रह्मणः प्रादुर्भावो जातः। सः भगवान् हिरणगर्भः तस्मिन् अण्डे वर्ष यावत् निवासं कृतवान् अनन्तरं तम् अण्डं द्वेधा विभाजितवान्। तस्य विभक्तस्य अण्डस्य एकः भागः धुलोकः अपरश्च भूलोकोऽभवत्। तयोः अण्डखण्डयोर्मध्ये आकाशं सृष्टवान्। जलस्योपरि परिप्लवां पृथ्वीं स्थापयामास एवश्च दश दिशानां विभागं कृतवान्। ततः परं सृष्टेः इच्छायुतः प्रजापतिः काल–मनस्–वाणी–काम–क्रोध–वशिष्ठः एतेषां सप्तर्षीणां प्रादुर्भावोऽपि ब्रह्माणा स्वस्मात् मनसः कृतः। एते सप्तर्षयः रूद्रगणाश्च प्रजावर्गस्य सृष्टिं कुर्वन्ति। ब्रह्माणा स्वस्य शरीरस्थ भागद्वयं कृतवान्। अर्द्धभागात् सः पुरूषः अर्धाच्च स्त्री अभवत्। तदनन्तरं तस्मात् स्त्रीगर्भात् प्रजानां सृष्टिम् अकरोत्। तावेव स्वायम्भुवः मनुः शतरूपा नाम्ना च प्रसिद्धौ अभवताम्। आभ्यामेव मानवीया सृष्टिभूत्। तदुक्तम् अग्निपुराणे –

**वशांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं चाप्य वक्त्रतः।**
**ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।**
**साधयास्तैरयजन्देवान्भूतमुच्चावचं भुजात्।**
**सनत्कुमारं रूद्रं च ससर्ज क्रोधसम्भवम् ।।**
**मरीचिमत्र्यग्ङिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।**
**वसिष्ठं मानसान्सप्त ब्राह्मणानिति निश्चितम् ।।**
**सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रूद्राश्च सत्तम ।**
**द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरूषोऽभवत् ।।**
**अर्धेन नारी तस्यां स ब्रह्मा वै चासृजत्प्रजाः ।।**[2]

अग्निपुराणे पुनः जगत्सर्गवर्णनम् आरभते यत् प्रकृतितः पूर्वं महत्तत्वस्य सृष्टिभवत्

तच्च ब्रह्मसर्गत्वेन ज्ञायते। द्वितीयश्च तन्मात्राणामाविर्भावो जातः तच्च भूतर्गत्वेन ज्ञायते। तृतीया वैकारिकसृष्टिरस्ति, तच्च ऐन्द्रियकसर्गत्वेन ज्ञायते। अनेन प्रकारेण बुद्धिपूर्वकं प्रकटितः प्राकृतसर्गः त्रिविधः भवति। चतुर्था यत् सृष्टिरस्ति सा मुख्यसर्गत्वेन प्रसिद्धास्ति। मुख्यं नाम स्थावराणाम्। यस्मात् पशुपक्षीणामुत्पत्तिरभूत् सः तैर्याग्योन्याख्यः पंचमः सर्गः। ऊर्ध्वस्रोतसां सृष्टिः देवसर्गत्वेन ज्ञायते अयश्च षष्ठः सर्गः। एतदनन्तरं अस्स्रोतसां सृष्टिभवत्, तच्च सप्तमः मानवसर्गः। अष्टमः अनुग्रहः सर्गः अयश्च सात्विकः तामसश्चापि वर्तते। अत्र क्रमशः अन्तिमाः पंञ्चसर्गाः वैकृतसर्गाः सन्ति एवश्च आरम्भिकाः त्रयः सर्गाः प्राकृतसर्गाः प्रोक्ताः। प्राकृतसर्गः वैकृतसर्गः नमवः कौमारसर्गश्च ब्रह्मणः प्रादुर्भूताः। एते नव सर्गाः अस्य जगतः मूलकारणानि सन्ति। **तदुक्तम अग्निपुराणे –**

**तथो र्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।**
**ततोऽस्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।।**
**अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्विकस्तामसश्च यः ।**
**पंञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ।।**
**प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तथा ।**
**ब्रह्मतो नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ।**[3]

जगतः सर्गप्रक्रियाविषये पुनरूच्यते यत् ख्यात्यादिदक्षकन्याभिस्साकं भृग्वादिमहर्षयः विवाहम् अकुर्वन्। केचन जनाः नित्य–नैमित्तिकप्राकृतभेदात् त्रिधा सृष्टिं स्वीकुर्वन्ति। ये प्रतिदिनं जायमानात् अवान्तरप्रलयात् जन्म स्वीकुर्वन्ति, अयं नित्यसर्गत्वेन ज्ञायते। भृगोः भार्या ख्यातिः धाताविधाता इत्याख्यायोः द्वयोः देवतयोः माता अभूत् एवश्च एव स्तवनम् अकरोत् । धातातः प्राणस्य विधाताश्च मृकण्डुकस्य जन्म अभवत्। मृकण्डोः पुत्रः मार्कण्डेयः आसीत्। मार्कण्डेयात् वेदशिरा अभवत्। मरीचेः भार्या सम्भूतिः पौर्णमासाख्यां पुत्रम् अजनयत्। अग्डिरायाः पत्निः स्मृतेः गर्भात् अनेकपुत्राणाम् एवश्च सिनीवाली–कहू–राका–अनुमति इत्याख्यानां चतसृणां कन्यकानां जन्म अभवत्। अत्रेः भार्या अनसूया सोम–दुर्वासादत्तात्रेयाख्यानां त्रयाणां पुत्राणां माता अभवत्। **तदुक्तम् अग्निपुराणे –**

**धातुर्विधातुर्द्वौ पुत्रौ क्रमात्प्राणो मृकण्डुकः ।**
**मार्कण्डेयो मृकण्डोश्च जज्ञे वेदशिरास्तथा ।**
**पौर्णमासश्च सम्भूत्यां मरीचेरभवत्सुतः ।**
**स्मृत्यामङ्गिरसः पुत्राः सिनीवाली कुहूस्तथा ।।**
**राका चानुमतिश्चात्रेनसूयाप्याजीजनत् ।**
**सोमं दुर्वाससं पुत्रं दत्तात्रेयं च योगिनम् ।।**[4]

सृष्टिक्रमं रूपयिष्यन्नाह अग्निपुराणे यत् पुलस्त्यमुनेः भार्या प्रीतिः दत्तोलिनामकस्य पुत्रस्य माता अभूत्। पुलहस्य भार्यायाः क्षमायाः गर्भात् सहिष्णोः सर्वपादेश्च जन्म अभवत्। क्रतोः भार्या सन्नतितः बालखिल्यनामकाः षष्टिः सहस्रं पुत्राणां जन्म अभवत्। वशिष्ठस्य भार्या ऊर्जा सजा–गात्र ऊर्ध्वबाहु–सवन–अनघ–शुक्र–सुतपा एतेषां सप्तानां माता अभूत्। स्वाहाग्नायोः पावकः पवमानः शुचिः इत्यादयः पुत्राः अभवन्। एवमेव अजात् अग्निष्वप्त, बर्हिषद् अनिग्न साग्निश्च पितरः अभवन्। पितृभ्यः स्वधायां मैना वेधारिणी च पुत्रीद्वयमभवत्। अधर्मस्य भार्या हिंसा, एतयोः अमृताख्याः पुत्रः निकृति इतयाख्या च कन्या अभवत्। एताभ्यां भयस्य नरकस्य च जन्म अभवत्। अभस्य भार्या नरकस्य च पत्नी वेदना अभवत्। मायातः मृत्योः वेदनातः च दुःखस्य जन्म अभवत्।

**ब्रह्मणः एकः रोदमानः पुत्रः अभवत्, रोदनात् सः रूद्रो जातः। अयं रूद्रः तदुक्तम् –**

**कन्यानिकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च ।**
**माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ।।**
**तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्यु भूतापहारिणम् ।**
**वेदाना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।।**
**मृत्योत्र्याधिजटाशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ।**
**ब्रह्मणश्च रूदखाते रोदनाद्रुद्रनामकः ।।**[5]

स्वायंभुवसर्गवर्णनप्रसंगे अग्निपुराणे उक्तं यत् भुवनकोशषस्य भूमेंः द्वीपादीनाश्च लक्षणानां वर्णनं अत्र क्रियते। आग्रीघ्र अग्निबाहु, वपुष्मान् द्युतिमान, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन एवश्च क्षयः एते प्रियव्रतस्य पुत्रा आसन्। पित्रा तेभ्यः सप्तद्वीपः प्रदत्ताः। आग्रीध्राय जम्बूद्वीपः – मेधातिथि प्लक्षद्वीपः, वपुष्मते शाल्मलिद्वीपः, ज्योतिष्मते कुलद्वीपः, द्युतिमते क्रौञ्चद्वीपः तथा च भव्याय शाकद्वीपः दतः । सर्वनाय च पुष्करद्वीपः प्रदत्तः। आग्रीघ्र स्वपुत्रेषु लक्षयोजनपरिमितः जम्बूद्वीपः विभाजितवान्। नाभि इत्यास्य कृते हिमवर्षः (भारतम्) प्रदतः। किम्पुरूषाय हेमकूटवर्षः हरिवर्षाय नैषधवर्षः, इलावृताय मध्यभागे मेरूपर्वतयुक्तः इलावृतवर्ष, रम्यकाय नीलाचलाश्रितः रम्यकवर्षः, हिरण्यवते श्वेतवर्षः, कुरवे च उत्तरकुरूवर्षः प्रदत्तः। भ्रदाश्चाय भद्राश्चवर्षः केतुमालाय केतमालवर्षः प्रदत्ताः।

## सन्दर्भाः –


1. अग्निपुराणम् 17/1–7/1–12
2. अग्निपुराणम् 17/8–17
3. अग्निपुराणम् 20/1–6
4. अग्निपुराणम् 20/1–12
5. अग्निपुराणम् 20/13–20



शोधच्छात्र<br>
ज्योतिषविभागः<br>
ज.रा.रा.सं.वि.वि., जयपुरम्

# ज्योतिषशास्त्रस्य षडांगानि

– दिव्यान्शुशर्मा

सुविदितोऽयं विषयः यत् सर्वेषां श्रेयोमार्गप्रदर्शकाः वेदाः एवेति। वेद शब्दस्य च व्यत्पत्तिः एवं विद्यते "विदन्ति अनेन इति वेदाः" इति समस्त वागंमयस्याधारः भवन्ति चत्वारो वेदाः। श्रवणमनेनावलोकनेन च महर्षिणां चिन्तकानां दृष्टिपथे समुन्दूताः वेदाः। वेदास्तु सर्व ज्ञान विज्ञान सम्पन्नाः यथाध्येन गवेषणेन कश्चिदपि विषयःनोपलभ्यो भवति। किन्तु वेदागंनां ज्ञानमन्तरा वेदार्थः न शक्य। अतः सकल विद्यानिधीनां वेदानां व्याख्यानाय वेदागंनि उत्पन्नानि

**तानि च वेदागंनि –**

**शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरूक्तं ज्योषिं तथा ।**
**कल्पश्वेति षडगंनि वेदस्याहुर्मनीषिणः इति ।**

**पुनः एतेषं षण्णां महत्त्वं निरीक्ष्यैव पाणिनीयशिक्षयां प्रतिपाद्यते –**

**दन्द पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठयते ।**
**ज्योतिषामयनं चक्षंर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।**
**शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतं ।**
**तस्मात्साड़ांगमधीतयैव ब्रह्मलोके महीयते[1] ।।**

## वेदागेंषु ज्योतिषशास्त्रस्य स्थानम् –

वेदानां स्मयकार्थवबोधंकत्वादेव वेदाडागानां वेदागंत्वम् । तत्र ज्योतिषमिति वेदागत्वेनन्यतम्। वेदोक्त कर्म करणे कालविधायक कार्यमेव ज्योतिषस्य वेदागंत्वे हेतुः। लोक कल्याण यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः वेदाः । प्रकृतेरादनाय तिथि वार नक्षत्र उदयास्तध्रुव समये यज्ञादेः व्यवस्था आसीत्। अतः इमें यज्ञाः कालाधीनाअ यतः सुष्ठुकाले कृतमेव यज्ञादि कर्म साफलयं

[1]पाणिनीय शिक्षा 41–42

भजते, अकाले विहितं कर्म वैफल्यं प्रयातीति। तस्य कालस्य ज्ञानं तावत् पृथ्वी–सूर्य–चन्द्र–ग्रह– नक्षत्राणामाधारेण भवति।

ग्रहनक्षत्रादिज्योतिषः पिण्डानां गत्यादि ज्ञानं ज्योतिषशास्त्रान्तरा न केनापि साध्यम्। एवं वेदोक्त यज्ञक्रियादिषु कालनिर्णयमनेन शास्त्रेणैव भवतीति ज्योतिषस्य वेदागंत्वमुपपन्नम्।

**यथोक्तं भास्कराचार्येण –**

**वेदास्तावत् यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालश्रयेण ।**
**शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात् वेदागंत्वं – ज्योतिषस्योक्तमस्मात ।।**

**तथा च वशिष्ठः –**

**क्रतु क्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरूक्ताः ।**
**शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदागंतामुष्य ततः प्रसिद्धः ।।**

**एवं सिद्धान्तराजे तु –**

**वेदायज्ञस्य प्रवृत्ता यजनमथ ककुन्कालयोनिश्चयेन ।**
**दिक्कालो भग्रहेभ्योनुमित परिमित ते पुनर्गोलसंस्थः ।।**
**गोलोनम्मोन्नतत्वं तदपमपलतस्ते तु सिद्धान्तगम्ये ।**
**तस्माद्वेदागंमग्यं नयनाभिहितं ज्योतिषं शास्त्रमेतत ।। इति**

**श्रुत्युत्तमाङ्ग ज्योतिषम् –**

ज्ञानात्मकस्य वेदपुरुषस्य षद्गुष्याड्गनि भवन्ति। व्याकरणादीनि तत्र प्रकृतिप्रत्यय विभाग पुरस्सरं शब्दानुशासनं व्याकरणं भवति वेदपुरुषस्य मुखम्। वर्ण स्वर मात्रा यति प्रभृतिः बलादि उच्चारणविधेरूपदेशिका शिक्षा भवति वेदपुरुषस्य नासिका रचनायां वर्णमात्रा यति प्रभृतिः नियामकं शास्त्रं निरुक्तं। एतत् वेदपुरूषस्य श्रोत्रात्वेन संज्ञितम्। वेदोक्त यज्ञादि विवरणं प्रतिपादिकानि श्रोत्रसूत्राणि श्रुति समस्त गृहस्थकर्म प्रतिपादिकानि ग्रहसूत्राणि जीवनोपयोगी विषय निर्देशरूपाणि धर्मसूत्राणि यज्ञवैदिकसम्बद्धानि शूल्वसूत्राणि च कल्प इति, कल्पो भवति

तस्य हस्तौ। ज्योतिष ज्योतिषचक्राधारेण–वेदोक्तकालनिर्णयार्थं प्रवृतं शास्त्रं तत् ज्योतिषशास्त्रम्। तत् वेदपुरुषस्य नेत्राड्ंगत्वेन – चिन्तितम्। एवमेतेष्वड्ंगेषु सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्–इत्युक्त दिशा नेत्राड्ंगभूतमिदं ज्योतिषशास्त्रं श्रुत्युक्तमाडंग भवति। **तथा चोक्तम्–**

**शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषीश्रोत्रमुक्तं निरुक्तम च कल्पः करौ ।**
**यातु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यै बुधैः ।।**
**वेद चक्षुः कलेदं स्मृतं ज्योतिषं, मुख्यता चाड्ंगमध्ये–स्य तेनोच्यते ।**
**संयुक्तो–पीतरैः कर्णनासादिभिः, चक्षुषाड्ंगेन हीनो न किञ्चितकरः ।। इति**

**तथा –**

**यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।**
**तद्वेदाड्ंग शास्त्राणां ज्योतिषं मूर्न्धिस्थितम् ।।**

**इत्थं च ज्योतिषशास्त्रं यद्वेदाड्ंगेषु सर्वातिशायि श्रेठत्वं भजते इति ।**

**ज्योतिषशास्त्रस्य षडांगानि –**

**1. जातक शास्त्रम् –**

यत्र जन्म कालिक ग्रहद्यावास्थितिमाधारीकृत्य जातस्य भूत – वर्तमान – भविष्यश्शुभाशुभफलादेशः क्रियते। तज्जातकम् आकशे हि यानि नक्षत्राणि द्दग्गोचराणि जायन्ते तानि सर्वाणि समप्रकृतिवभ्ददासन्ते। परं नक्षत्रेषु आद्यन्तं महदन्तरं वर्तते। यथा तेषु नक्षत्रेषु स्थूल सूक्ष्मप्रखरज्योतिर्मयस्वल्पज्योतिर्मयमेवनेके भेदाः उतपद्यन्ते। तेन नक्षत्रवशात् च शुभाशुभफलविचारः विचार्यन्ते।

**2. गोलः –**

**द्दष्टान्त एवान्निभ ग्रहाणां संस्थानमान प्रतिपादनार्थम् ।**
**गोलः स्मृतः क्षेत्र विशेष एवं प्राज्ञैरतः स्यादगणितेन गम्यः ।।**

(सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्यायः 5.5)

इति श्लोकेनात्र गोल स्वरूपमुच्यते। गोलस्तु क्षेत्र विशेषः एव गोलदृष्टान्ते निखिलग्रह गणित प्रतिपाद्य पदार्थस्वरूप युक्ति प्रतिपादनात् ग्रन्थस्यापि गोलाभिधेयता। क्षेत्र विशेषश्च गणितगम्या एव भवति।

**अयमेवार्थः श्रीपतेः श्लोकेनापि सङ्गच्छते –**

**ग्रहनक्षत्रधरित्री संस्थानस्येदं दर्शनोपायाः ।**
**गोल इति कथ्यते–सौ क्षेत्रविशेषौ गणितगम्यः ।।**

### 3. शकुनशास्त्रम् –

शकुनशास्त्रस्यैव निमित्त शास्त्रमिति नामान्तरं दरीदृश्यते। पूर्वजन्म कर्मणः शुभाशुभ फलं शकुनं सूचयति। तदुक्तं हि प्रश्नमार्गे –

**अन्य जन्मान्तर कृतं कर्मपुंसां शुभाशुभं ।**
**यतस्य शुकनः प्रोक्तं निवेदयत पृच्छताम् ।।**

**शुभाशुभ भेदात् शकुनं द्विविधं प्रोच्यते।**

### 4. प्रश्नशास्त्रम् –

प्रश्नशास्त्रं ज्योतिषशास्त्रस्य महत्वपूर्णमङ्ग भवति। जातकं नास्ति तदापि प्रश्नशास्त्रस्याधारेण एव पृच्छकस्य समस्त प्रश्ननां यथार्थ फलं वक्तुं शक्यते। प्रश्सास्त्रे दैनंदिन वनसम्बन्धित समस्त प्रश्नानां विश्लेषणमेव शास्त्रीयविवेचनमपि क्रियते।

### 5. मुहूर्तः –

ज्योतिषशास्त्रस्य षडङ्गेषु मुहूर्तः अन्यतमः। मुहूर्तः ज्योतिःशास्त्रस्य संहिता स्कन्धे–न्तर्भवतीति केचन् वदन्ति। होरास्कन्धे–न्तर्भवन्तीत्यन्ये वदन्ति। तिथिवारनक्षत्रयोगकरणानि पञाङ्गन्युच्यते। एतेषां पंञाङ्गधारेण शुभसमयः निश्चिते। अस्यैव मुहूर्तःइति व्यवहारः। यः कोऽपि पुरुषः शुभमुहूर्ते दुमुहूर्ते वा यत् किमपि कार्यं करोति चेत् तस्य फलं न केवलमिह जन्मन्यपितु तस्य वंशजैरनुभोक्तव्यमेव।

## 6. गणितम् –

ज्योतिष ज्योतिश्शास्त्रस्य षडङ्गेष्वन्यतमम्। अङ्गगणितम् बीजगणितम् चेत्येतइद द्वयमपि ग्रहविज्ञानस्याङ्गत्वेन मतम्। आर्यभट्टः ब्रह्मगुप्तः, भासकराचार्यश्वेते त्रयोः विपश्विद्वराः ग्रहतन्त्रस्य रचयितारः सन्ति। गणिततन्त्रस्य धन–ऋण–गुणा–भागहाराख्य चत्वारो–पि विधयः वर्ग–घन–वर्गमूल–धनमूलभिधाश्व विधिविशेषाः भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त कृतेषु त्रैशाशिक विषये विषयास्तत्राकलिताः सन्ति। भास्कराचार्यब्रह्मगुप्तौ, सरल समीकरणसिद्धान्तं सविशदं विवृण्वन्तौ द्स्येते। त्रिकोणमिति तेन च भरतीयाः विद्वांसो–धिकारं निहितवन्तः।

**सन्दर्भग्रन्थाः –**


1. डॉ. रामचन्द्रपाण्डेयः, ज्योतिवदिाभारणम्, मोतीलाल बनारसीदास्, वाराणसी, 1994 ।
2. सीतारामझा, ताजिकनीलकण्ठी, चौखम्भ संस्कृतप्रतिष्ठानम्, दिल्ली, 1992 ।
3. श्रीनिवासाचार्यः, प्रश्नमार्गम्, ज्योतिर्विज्ञानप्रकाशनम्, उड्डुपी, 1984 ।
4. गोपेशकुमारः, फलदीपिका, मोतीलाल बनारसीदास्, वाराणसी, 1996 ।
5. मुकुन्दबल्लभमिश्रः, फलितमार्तण्डः, मोतीलाल बनारसीदास्, वाराणसी, 1968 ।
6. श्रीनारायणशर्मा, बृहज्ज्योतिषसारः, ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स् कुकसेलर्, वाराणसी, 1968।
7. श्रीसुरेशचन्द्रमिश्रः, बृहज्जातकम, रंज्जन् पब्लिकेशनस्, दिल्ली, 1995 ।



शोधच्छात्र

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयःजयपुरम्

# ज्योतिषशास्त्रस्योद्भवः विकासश्च

– अजयकुमारशर्मा

यदि वयं पक्षपातं त्यक्त्वा विचारयामः तर्हि स्पष्टं भविष्यति यत् अन्येषां शास्त्राणां इव भारतीयाः अपि अस्य शास्त्रस्य मूल आविष्कारकाः सन्ति। भारतीयगुरुणां मूर्तरूपं मन्यमानं योगविज्ञानं तस्य मेरुदण्डः अस्ति अत्र ऋषयः योगाभ्यासद्वारा सूक्ष्मबुद्ध्या शरीरान्तर्गतं सौरमण्डलं दृष्ट्वा स्वनिरीक्षणेन आकाशीयसौरमण्डलस्य व्यवस्थां कृतवन्तः। अस्य शास्त्रस्य प्राणरूपं संख्याशास्त्रस्य उत्पत्तिः भारते एव अस्ति। मध्ययुगीन भारतीयसंस्कृतिः इति पुस्तके श्री ओझा जी इत्यनेन लिखितम् अस्ति यत् भारतेन अन्येभ्यः देशवासिनः यत् सर्वाधिकं महत्त्वपूर्णं विषयं शिक्षितं तत् अस्ति। संख्याशास्त्रं, गणितं सम्पूर्णेषु ज्योतिषादिषु अद्य या प्रगतिः प्राप्यते तस्य मूलकारणं वर्तमानसंख्याक्रमः अस्ति, यस्मिन् 1 तः 9 तथा 0 पर्यन्तं संख्याः, एतैः 10 चिह्नैः सह संख्याशास्त्रस्य सर्वं कार्यं प्रचलति, एषः क्रमः गृहीतः आसीत् इति च विश्वेन स्वीकृतम्।

पूर्वोक्तोद्धरणात् स्पष्टं भवति यत् प्राचीनकाले भारतीयऋषयः खगोलशास्त्रं ज्योतिषशास्त्रे च परिचिताः आसन्। स्पष्टोल्लेखस्य अभावात् सः ग्रीसदेशात् आगतः इति कथ्यते। परन्तु चिन्तनेन वास्तविकं वस्तु एवं न दृश्यते। यतोहि निवेश शब्दनां प्रमाणे तैः होरा (आरोही एवं राशि) हिबुक (जन्मकुण्डल्याः चतुर्थभावः) आपक्लोक्लीं, द्रेष्काण (राशेः तृतीयांशः), कण्टक (चतुर्थभावः), पणकर, अनाफा, सुनफा, दुर्धारा (योगविशेषः), तुंग (उच्चस्थानम्), मुसल्लह (नवमंश), मुन्था (जन्मग्नेस्थितः कस्यचिदपि वाञ्छितवर्षस्य चिन्हम्), इन्दुवर, इथाशल, इस्राफ, यमुना, मणऊ (योगविशेष) प्रस्तुताः कृतवन्तः।

प्राचीनभारते ग्रीसदेशात् अनेके छात्राः वर्षाणि यावत् भारतीयगुरुभिः सह भिन्नशास्त्राणाम् अध्ययनं भिन्नशास्त्राणाम् अध्ययनं कर्तुं च आगच्छन्ति स्म, यस्मात् कारणात् अत्यधिकसम्पर्कस्य अनेकानि कारणानि सन्ति। तिस्रशताब्द्यां षड्शताब्द्याः अन्तः केचन च भारते ज्योतिषशास्त्रे बहवः ज्योतिषज्ञाः प्राप्ताः।

डब्ल्यू. डब्ल्यू. हन्टरमहाभागानुसारं सिन्द–हिन्दनामाख्येन भारतीयज्योतिष सिद्धान्तानामरबीभाषायाम् अनुवादमकरोत्। अरबीभाषायां लिखिते 'ऐन उल अम्बाफितल कलुली अटवा' पुस्तकेऽस्मिन् लिखितमस्ति यत् भारतीयविद्वान्सः अरबीभाषायान्तर्गते बगदादक्षेत्रस्य

राज्यसभायां गत्वा ज्योतिषशास्त्रस्य चिकित्साशास्त्रस्य च अध्यापनं अकुर्वन्, कर्क नामकविद्वान् ज्योतिष एवं चिकित्साशास्त्रयोर्ज्ञानार्थं शकसंवत 614 तमे वर्षे सम्राट अलमसूरस्य दरबारेऽगच्छत्। राशिचक्राणां ग्रहाणां च स्पष्टनामानि न प्राप्नुवन्रूपा या द्वितीया युक्तिः दत्ता, सा व्यर्था। यतः प्राचीनसाहित्ये यदा सौरलोकनक्षत्राणां उल्लेखः भवति तदा कथं स्थूलतत्त्वराशिज्ञानं न स्यात्।

चक्रशब्दः ऋग्वेदसंहितायां आगतः, यत् राशिचक्रबोधकम् अस्ति। अस्मिन् मन्त्रे 'द्वादशारम् नहि तज्जराय' द्वादशारं शब्दः 12 राशीनां बोधो कारयति। प्रकरणविशेषेषु ध्यानं दत्त्वा मन्त्रे वा द्वादशराशिनां दिशायां वा स्पष्टता भविष्यति। उत्तरप्रदेशस्य पूर्वमुख्यमन्त्री डॉ. सम्पूर्णानन्दः श्द्वादशारंश इति शब्दे द्वादशराशिबोधकत्वेन शङ्कयति तथा च द्वादशमासस्य वाचकस्य सम्भावना वर्तते। किन्तु तस्य सम्भावना तार्किकी नास्ति। कारणं स्पष्टं यत् अस्य मन्त्रस्य अग्रिमे भागे 12 राशिषु 360 दिवसाः विचारिताः सन्ति। 13 मासेषु 360 दिवसाः न भवितुम् अर्हन्ति। यतोहि चन्द्रः 29 दिवसान् न अतिक्रमति। एतदनुसारमेकस्मिन् वर्षे 354 दिनानि भवन्ति, परन्तु मन्त्रे 360 दिवसानामोल्लेखं कृतमस्ति।

प्रत्येकस्मिन् राशौ 30 डिग्री भवति तथा प्रत्येकभागस्य औसतमानः एकदिवसः भवति, इत्थं द्वादशराशिचक्रे 360 दिनानि भवन्ति। जैन – ज्योतिषस्य विद्वान्सः गर्ग, ऋषिपुत्र एवं कल्काचार्येण पारम्परिकराशेः प्रतिनिधित्वमकरोत्। केचन पाश्चात्यविद्वान् भारतीयज्योतिषशास्त्रं बेबिलोनदेशात् आगतं इति वदन्ति। तैः लिखितम् अस्ति यत् भारतीयाः बेबिलोनदेशं गत्वा ततः ज्योतिषशास्त्रं शिक्षन्ति स्म।

कस्मिन् अपि शास्त्रे विज्ञानकालस्य अध्ययनं कर्तुं तस्य इतिहासं ज्ञातुं शक्यते। यतोहि तस्य शिरस्य इतिहासस्य माध्यमेन विषयस्य रहस्यम् अवगम्यते सदस्यः अस्य शास्त्रस्य अध्ययनं कुर्वन् आसीत्। अतः अस्य शास्त्रस्य उत्पत्तिस्थानं कालं च निश्चयेन ज्ञातुं किञ्चित् कपटं भवति। अन्यज्ञानस्य स्रोतस्य उत्पत्तिं ज्ञातुं शक्यते। परन्तु प्रकृतेः अद्वितीयस्य अन्यस्य बालकस्य अन्वेषणं मानवशक्तितः परम् अस्ति तमसंख्याशास्त्रम् अन्ये वा। शब्देन इदमपि वक्तुं शक्यते यत् मनुष्यः चेतनाप्राप्तिदिनात् आरभ्य सः ज्योतिषस्य अत्यावश्यकतत्त्वानां अध्ययनं कर्तुं आरब्धवान्, यद्यपि तस्य अन्येषु जीवने च एतेषां तत्त्वानां अभिव्यक्तिक्षमतायाः अभावः आसीत्। तत् न शक्तवान् तत्त्वैः विना सम्भवाः अभवन्, फलतः मानवजीवनस्य विकासेन सह ज्योतिषशास्त्रस्य विकासः अभवत्। कालवर्गीकरणदृष्ट्या अस्य शास्त्रस्य इतिहासः निम्नलिखितयुगेषु विभक्तुं शक्यते।

- अन्धकारयुगः — ई.पू 10000 ई.पू।
- उदयकालः — ई.पू 10001 ई.पू. 500 पर्यन्तम्।
- आदिकालः — ई.पू. 501 ई.पू 500 ई. पर्यन्तम्।
- पूर्वमध्यकालः — ई. 501 ई. 1000 ई. पर्यन्तम्।
- उत्तरमध्यकालः — ई.1001 ई. 1600 ई. पर्यन्तम्।
- आधुनिक या अर्वाचीनकालः — ई. 1601 ई. 1941 ई. पर्यन्तम्।

उपर्युक्तकालवर्गीकरणं ज्योतिषस्य विकासस्य आधारेण कृतम्, यद्यपि भारतीयसंस्कृतेः इतिहासः अपि उपर्युक्तखण्डेषु विभक्तः अस्ति। परन्तु ज्योतिषशास्त्रं शाश्वतक्षयम् इति मत्वा अपि मुख्यं ध्यानं विकासे एव कृतम् अस्ति भोजनव्यवस्थायाः।

तात्पर्यम् अस्ति यत् आधुनिकयुगे पाश्चात्यज्योतिषस्य सम्पर्कात् गणितज्योतिषस्य सिद्धान्तानां वैज्ञानिकविमर्शः आरब्धः अस्ति। यदि भारतीयज्योतिषी आकाशनिरीक्षणं स्वीकृत्य नूतनज्योतिषेण सह तुलनां कुर्वन्ति तर्हि पूर्वमध्यकालीनकालात् गृहगणितस्य सारणीनां स्थूलता दूरीकृत्य भारतीयज्योतिषस्य महत्त्वं अन्यदेशवासीनां कृते प्रकटितव्यम्।

**सन्दर्भाः—**


1. जातकपारिजातः, ले.श्रीवैद्यनाथदेवज्ञः, सं .डॉ. सुरेशचन्द्रमिश्रः, चौखम्बासुभारतीप्रकाशनम् वाराणसी, 2006।
2. पञ्चाङ्गविज्ञानम्, डॉ. कैलाशचन्द्रशर्मा, जगदीशसंस्कृतपुस्तकालयः जयपुरम्।
3. वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ले. श्रीपाराशरमुनिः, सं. डॉ. पद्मनाभशर्मा, चौखम्बा सुभारती प्रकाशनम् वाराणसी, 2004।
4. जातकालङ्कारः, ले. श्रीगणेशकविः, सं. डॉ. सत्येन्द्रमिश्रः, चौखम्बासुभारतीप्रकाशनम् वाराणसी, 2003।
5. भारतीय ज्योतिष का इतिहास, डॉ. गोरखप्रसाद, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ—2004 ।



शोधच्छात्रः, ज्योतिषशास्त्रम्
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थान
संस्कृतविश्वविद्यालयः जयपुरम्

# शिक्षायाः अवधारणा

– संजयकुमारशर्मा

ज्ञानं विद्या शिक्षेति पदत्रयं सूचनाप्रदानादानप्रदानयोरर्थे प्रकारान्तर्येण प्रयुज्यते। शिक्षाग्रन्थाः वर्णोच्चारणविधिविशेषतो वर्णयन्ति। कथं वर्णाः उच्चारणीयाः। किं तेषां स्थानम् ? कश्च तत्र यत्नः ? कण्ठताल्वादीनामुच्चारणे किं महत्त्वम् ? कति वर्णाः ? कति स्थानानि ? कति स्वराः ? कथं च ते प्रयोज्या इत्यादयः विषयाः शिक्षाग्रन्थेषु विविच्यन्ते। नितिशतके भर्तृहरिः कथयति– "विद्याविहिनः पशुः" तद्वदेन ज्ञानं मनुष्यस्य तृतीयं नेत्रं कथितं "सा विद्या या विमुक्तये" कथयित्वा विद्यायाः लक्ष्यं निर्धारितम्। उपनिषदि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मा इत्यनेन शिक्षा आत्मज्ञान–ब्रह्मज्ञानश्च प्रदानकरणस्य प्रक्रियोच्यते। शिक्षा शब्दः संस्कृत व्याकरणस्य शिक्ष् विद्योपादाने इत्यस्माद्धातोः निष्पद्यते। अर्थात् शिक्ष्यते विद्योपादीयते इति शिक्षा। अस्याशयोऽस्ति विद्याग्रहणमेव शिक्षेति। शिक्षा शब्दः लेटिनभाषायाः एजुकेशन (Education) इत्यस्य पर्यायः अस्ति। अस्य मूलरूपं एडुकेटम् (Educatum) अस्ति। यस्यार्थः अस्ति – शिक्षणस्य कला। एकः अन्यः शब्दः अस्ति एडुकेयर (Educare), यस्यार्थः अस्ति – शिक्षितकरणम्, उत्थापनम् (To bring up) समक्षे आनयनम् (To bring forth), नेतृत्वप्रदानञ्च (To bring out)। एते सर्वे अर्थाः शिक्षायाः क्रियां प्रक्रियां प्रति सङ्केतयन्ति। अतः शिक्षा उदारसङ्कीर्णार्थेष्ववज्ञायते।

"सा विद्या या विमुक्तये" इत्यासीत् प्राचीनसमये, वेदानुसारं वर्तते यत् अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमस्ति इति। सा विद्येवोत्तमा या मुक्तं प्रददाति। वेद–शास्त्र–विज्ञानादीनां साध्वनुशीलने तत्वार्थज्ञानञ्च विद्या इति स्वीक्रियते। उपनिषदानुसारं विद्या द्विधा वर्तते – अपरा विद्या परा विद्या च। यया विद्यया लौकिकज्ञानस्य प्रातिर्भवति सा विद्या अपरा विद्या तथा यया विद्यया अक्षरब्रह्मविषयकज्ञानं प्राप्यते सा परा विद्या भवति। शिक्षा पदस्य निर्देशः, शिक्षणम्, प्रशिक्षणम्, अनुशासनम्, पालनम् पोषणञ्च संस्कृतिः चेत्याद्यर्थाः प्रतीयन्ते।

उपर्युक्तैः अर्थैः शिक्षा एका विकाससम्बन्धिनी प्रक्रिया वर्तते। अस्य विकासस्य गतिर्ज्ञातुं शिक्षायाः ज्ञानं परमावश्यकं भवति। शिक्षा शब्दस्तु प्रक्रियायाः द्योतकः। पूर्वमेव स्पष्टं यत् शैक्षिकसामाजिकविज्ञानयोः अन्योन्यप्रक्रियासु बलं दत्वा शिक्षा अर्थस्य कुञ्चिका स्वीकृता। अत्र शिक्षा सचेतनरूपे नियन्त्रता प्रक्रिया वर्तते यया व्यक्तिषु तथा च व्यक्तिषु तथा व्यक्तिभिः समूहे परिवर्तनमजायत।

अनया दृष्टया शिक्षा तादृशी प्रक्रिया वर्तते या खलु जन्मना एव प्रारभ्यते जीवनपर्यन्तञ्च प्रचलति। अत्र केषाञ्चिज्जनानां धारणा वर्तते यत् प्रत्येकानुभवस्य प्रभावः न्यूनाधिकं मानवस्य व्यवहारे आपतति, अतः शिक्षायां तस्य प्रभावोऽपि दृष्टिगोचरो भवति। चेदिदं सिद्धयति यत् शिक्षाजीवने वर्तते अथवा सम्पूर्णजीवनमेव शिक्षा वर्तते। अपि चात्र एवं न ज्ञातव्यं यत् विद्यालयेऽध्ययनमात्रं शिक्षा सीमितार्थे स्वीकृता, अपितु शिक्षा पदस्य समानार्थी आङ्गलभाषायाः म्कनबंजपवद शब्दस्य मुख्योद्देश्यं मानवव्यवहारे प्रभावोत्पादनं स्वीकृतम्। तथा च पितरौ परिवारस्यान्ये सदस्यश्चापि विद्यालयस्योपेक्षया न्यूनातिन्यूनं चेतनप्रभावं बालकेषु स्थापयन्ति।

डॉ. आर ए शर्मामहोदयः शिक्षायाः अर्थः स्पष्टयति यत् शिक्षा व्यापकस्वरूपतां प्रतिपादयति। सामान्यजनानां दृष्टिकोणं तु शिक्षा सङ्कुचितार्थं द्योतयति। एतन्नेव युक्तम्। लोकेऽस्मिन् विद्या एव तज्जनोति या मानवे ज्ञानद्योति प्रज्वालयति, अविद्यान्धतमसं व्यपोहरति, दुर्गुणत्रयं वारयतिसदगुणञ्च सञ्चारयति, कीर्तिं प्रथयति, गौरवं विकायति, यशो वितनोति, भूभ्रत्सु चादरमावहति। एषा मातृवत् संरक्षिका, पत्रवत् सत्पथप्रदर्शिका, कान्तावत् सुखदा मनोरञ्जिका च, वैभवदायिनी, दुर्गुणं नाशयित्वं मनः पवित्रयति। अतः सर्वमनोरथपूर्णत्वात् इयं कल्पतेति परिज्ञायते।

पैनीमहोदयेन शिक्षायारपरं प्रभेदमपि कृतं, यत् शिक्षायारभिप्रायस्तु वृद्धया अथवा विकासेन सिद्धयति। शिक्षया व्यवहारपरिवर्तनमनिवार्यतां भजते। सर्वेषां परिवर्तनानामर्थः वृद्धिरेव भवति। कस्यचिद् शिक्षायाः मार्गः चितो भवेत् अनुचितो वा तत्र वृद्धिरेव जायते। यः बालकः चौरसमूहे निवसन् राजपुरुषान् भ्रामयति, आपणात् सामग्रीः चोरयति। एवमेवान्यानि सामाजिकदुष्कृयानि सफलतापूर्वकं कुर्वन् स सिद्धतामवाप्नोति। तस्य एकं मार्गं प्रतिवद्धिः सिद्धयति तथा चानया सः शिक्षितोऽपि जायते। उपर्युक्तैः दृष्टान्तैः सङ्घटिता शैक्षिकप्रक्रिया विज्ञापयति यत् शिक्षायाः प्रक्रिया सैव सुनिश्चिता या प्रक्रिया विद्यालयपरिवारे वा अभिष्टव्यवहारपरिवर्तनार्थमुपयुक्तपरिस्थितिमुत्पादयति। एवञ्च नियोजनमपि करोति।

**सन्दर्भाः –**


1. चौबे आर के, भारत के प्रमुख शिक्षादर्शन, आविष्कार पब्लिशर्स डिष्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर–2004।
2. बघेला डॉ. हेतसिंह, शिक्षा मनोविज्ञान, राजस्थान प्रकाशन जयपुर–2006 ।
3. त्यागी एवं पाठक, शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
4. पाठक पी डी, भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।



शोधसन्धाता, शिक्षा
जरारासंविवि.जयपुरम्

mbgraphic#9413453790